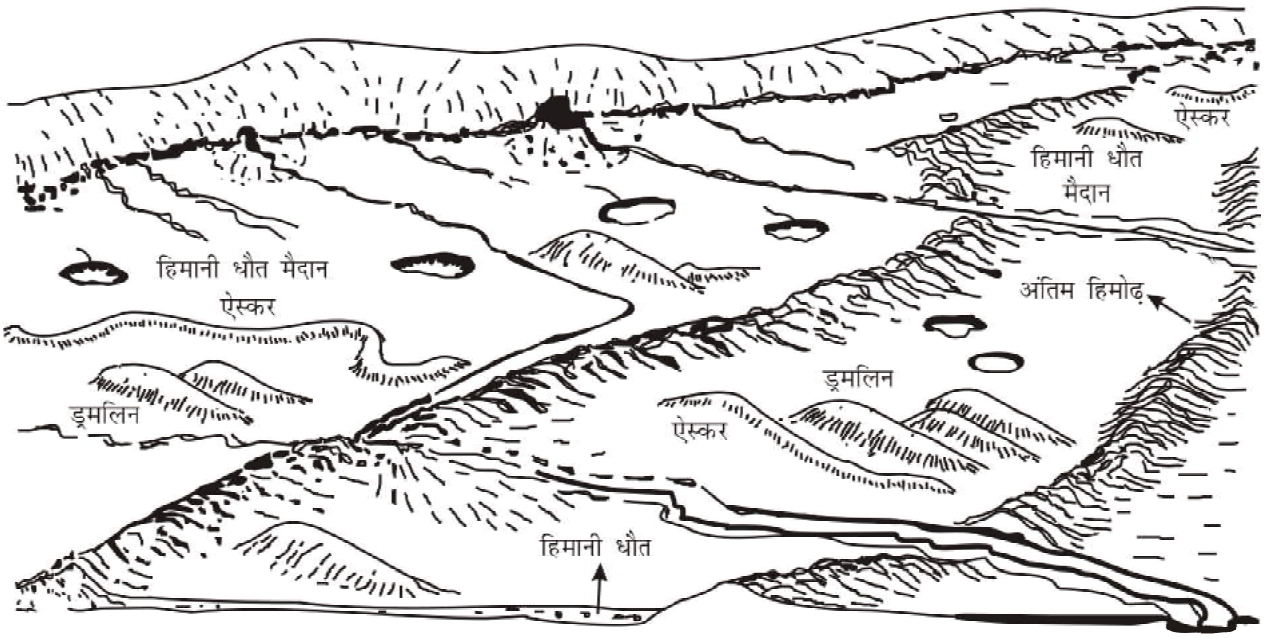

चित्र 7.14 : हिमनदीय स्थलाकृति के विभिन्न निक्षेपित भू-आकृतियों का सुंदर चित्रण (स्पेन्सर, 1962 से संकलित एवं संशोधित)

हिमनदों के तल, किनारों या छोर पर बर्फ पिघलने से सरिताएँ बनती हैं। कुछ मात्रा में शैल मलबा इस पिघले जल से बनी सरिता में प्रवाहित होकर निक्षेपित होता है। ऐसे हिमनदी-जलोढ़ निक्षेप हिमानी धौत (Outwash) कहलाते हैं। हिमोढ़ निक्षेप के विपरीत हिमानी धौत (Outwash deposits) प्राय: स्तरीकृत व वर्गीकृत होते हैं। हिमनद अपक्षेप में चट्टानी टुकड़े गोल किनारों वाले होते हैं। चित्र 7.14 में हिमनद क्षेत्रों के मुख्य निक्षेपित स्थलरूप दर्शाये गये हैं।

हिमोढ़

हिमोढ़, हिमनद टिल (Till) या गोलाश्मी मृत्तिका के जमाव की लंबी कटकें हैं। अंतस्थ हिमोढ़ (Terminal moraines) हिमनद के अंतिम भाग में मलबे के निक्षेप से बनी लंबी कटके हैं। पार्श्विक हिमोढ़ (Lateral moraincs) हिमनद घाटी की दीवार के समानांतर निर्मित होते हैं। पार्श्विक हिमोढ़ अंतस्थ हिमोढ़ से मिलकर घोड़े की नाल या अर्धचंद्राकार कटक का निर्माण करते हैं (चित्र 7.13)। हिमनद घाटी के दोनों ओर अत्यधिक मात्रा में पार्श्विक हिमोढ़ पाए जाते हैं। इस हिमोढ़ की उत्पत्ति पूर्णतया आंशिक रूप से हिमानी-जल द्वारा होती है; जो इस जलोढ़ को हिमनद के किनारों पर धकेलती है। कुछ घाटी हिमनद तेजी से पिघलने पर घाटी तल पर हिमनद टिल को एक परत के रूप में अव्यवस्थित रूप से छोड़ देते हैं। ऐसे अव्यवस्थित व भिन्न मोटाई के निक्षेप तलीय या *तलस्थ* (Ground) *हिमोढ़* कहलाते हैं। घाटी के मध्य में पार्श्विक हिमोढ़ के साथ-साथ हिमोढ़ मिलते हैं जिन्हें मध्यस्थ (Medial) हिमोढ़ कहते हैं। ये पार्श्विक हिमोढ़ की अपेक्षा कम स्पष्ट होते हैं। कभी-कभी मध्यस्थ हिमोढ़ व तलस्थ के अंतर को पहचानना कठिन होता है।

एस्कर (Eskers)

ग्रीष्म ऋतु में हिमनद के पिघलने से जल हिमतल के ऊपर से प्रवाहित होता है अथवा इसके किनारों से रिसता है या बर्फ के छिद्रों से नीचे प्रवाहित होता है। यह जल हिमनद के नीचे एकत्रित होकर बर्फ के नीचे नदी धारा में प्रवाहित होता है। ऐसी नदियाँ नदी घाटी के ऊपर बर्फ के किनारों वाले तल में प्रवाहित होती हैं। यह जलधारा अपने साथ बड़े गोलाश्म, चट्टानी टुकड़े और छोटा चट्टानी मलबा मलबा बहाकर लाती है जो हिमनद के नीचे इस बर्फ की घाटी में जमा हो जाते हैं। ये बर्फ पिघलने के बाद एक वक्राकार कटक के रूप में मिलते हैं, जिन्हें *एस्कर* कहते हैं।

हिमानी धौत मैदान (Outwash plains)

हिमानी गिरिपद के मैदानों में अथवा महाद्वीपीय हिमनदों

से दूर हिमानी-जलोढ़ निक्षेपों से (जिसमें बजरी, रेत, चीका मिट्टी व मृत्तिका के विस्तृत समतल जलोढ़-पंख भी शामिल हैं), हिमानी धौत मैदान निर्मित होते हैं।

नदी के जलोढ़ मैदान व हिमानी धौत मैदानों में अंतर स्पष्ट करें।

ड्रमलिन (Drumlins)

ड्रमलिन हिमनद मृत्तिका के अंडाकार समतल कटकनुमा स्थलरूप हैं जिसमें रेत व बजरी के ढेर होते हैं। ड्रमलिन के लंबे भाग हिमनद के प्रवाह की दिशा के समानांतर होते हैं। ये एक किलोमीटर लंबे व 30 मीटर तक ऊँचे होते हैं। ड्रमलिन का हिमनद सम्मुख भाग स्टॉस (Stoss) कहलाता है, जो पृच्छ (Tail) भागों की अपेक्षा तीखा तीव्र ढाल लिए होता है। ड्रमलिन का निर्माण हिमनद दरारों में भारी चट्टानी मलबे के भरने व उसके बर्फ के नीचे रहने से होता है। इसका अग्र भाग या स्टॉस भाग प्रवाहित हिमखंड के कारण तीव्र हो जाता है। ड्रमलिन हिमनद प्रवाह दिशा को बताते हैं।

गोलाश्मी मृत्तिका व जलोढ़ में क्या अन्तर है?

तरंग व धाराएँ

तटीय प्रक्रियाएँ सर्वाधिक क्रियाशील हैं और इसी कारण अत्यधिक विनाशकारी होती हैं। क्या आप नहीं सोचते कि तटीय प्रक्रियाओं तथा उनसे निर्मित स्थलरूपों को जानना अति महत्त्वपूर्ण है?

तट पर कुछ परिवर्तन बहुत शीघ्रता से होते हैं। एक ही स्थान पर एक मौसम में अपरदन व दूसरे मौसम में निक्षेपण हो सकता है। तटों के किनारों पर अधिकतर परिवर्तन तरंगों द्वारा संपन्न होते हैं। जब तरंगों का अवनमन होता है तो जल तट पर अत्यधिक दबाव डालता है और इसके साथ ही साथ सागरीय तल पर तलछटों में भी दोलन होता है। तरंगों के स्थायी अवनमन के प्रवाह से तटों पर अभूतपूर्व प्रवाह पड़ता है। सामान्य तरंग अवनमन की अपेक्षा सुनामी लहरें कम समय में अधिक परिवर्तन लाती हैं। तरंगों में परिवर्तन (उनकी आवृति आदि) होने से उनके अवनमन से उत्पन्न प्रभाव की गहनता भी परिवर्तित हो जाती है।

क्या आप तरंग व धाराओं को उत्पन्न करने वाले बलों के विषय में जानते हैं? यदि नहीं तो महासागरीय जल का परिसंचरण, अध्याय पढ़ें।

तरंगों के कार्य के अतिरिक्त, तटीय स्थलरूप कुछ अन्य कारकों पर भी निर्भर हैं। ये हैं: (i) स्थल व समुद्री तल की बनावट, (ii) समुद्रोन्मुख उन्मग्न तट या जलमग्न तट। समुद्री जल स्तर को स्थिर या स्थायी मानते हुए, तटीय स्थलरूपों के विकास को समझने के लिए तटों को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है : (i) ऊँचे, चट्टानी तट (जलमग्न तट) (ii) निम्न, समतल व मंद ढाल के अवसादी तट (उन्मग्न तट)।

ऊँचे चट्टानी तट

ऊँचे चट्टानी तटों के सहारे तट रेखाएँ अनियमित होती हैं तथा नदियाँ जलमग्न प्रतीत होती हैं। तटरेखा का अत्यधिक अवनमन होने से किनारे के स्थल भाग जलमग्न हो जाते हैं और वहाँ फियोर्ड तट बनते हैं। पहाड़ी भाग सीधे जल में डूबे होते हैं। सागरीय किनारों पर प्रारंभिक निक्षेपित स्थलरूप नहीं होते। अपरदित स्थलरूपों की बहुतायत होती है।

ऊँचे चट्टानी तटों के सहारे तरंगें अवनमित होकर धरातल पर अत्यधिक बल के साथ प्रहार करती है जिससे पहाड़ी पार्श्व भृगु (Cliff) का आकार के लेते हैं। तरंगों के स्थायी प्रहार से भृगु शीघ्रता से पीछे हटते हैं और समुद्री भृगु (Cliff) के सम्मुख तरंग घर्षित चबूतरे बन जाते हैं तरंगें धीरे-धीरे सागरीय किनारों की अनियमितताओं को कम कर देती हैं।

समुद्री भृगु से गिरने वाला चट्टानी मलबा धीरे-धीरे छोटे टुकड़ों में टूट जाता है और लहरों के साथ घर्षित होता हुआ किनारों से दूर निक्षेपित हो जाता है। भृगु के विकास व उसके निवर्तन के वाँछनीय समय के बाद तट रेखा कुछ सम/चिकनी हो जाती है तथा कुछ अतिरिक्त मलबे के किनारों से दूर जमाव से तरंग घर्षित वेदिकाओं के सामने तरंग निर्मित वेदिकाएँ देखी जा सकती हैं। जैसे ही तटों के साथ अपरदन आरंभ होता है, वेलांचली प्रवाह (Longshore current) व तरंगें इस अपरदित पदार्थ को सागरीय किनारों पर *पुलिन* (Beaches) और *रोधिकाओं* के रूप में निक्षेपित करती हैं। रोधिकाएँ

(Bars) जलमग्न आकृतियाँ हैं और जब यही रोधिकाएँ जल के ऊपर दिखाई देती हैं तो इन्हें *रोध* (Barriers) कहा जाता है। ऐसी रोधिकाएँ जिनका एक भाग खाड़ी के शीर्षस्थल से जुड़ा हो तो इसे *स्पिट* (Spit) कहा जाता है। जब रोधिका तथा स्पिट किसी खाड़ी के मुख पर निर्मित होकर इसके मार्ग को अवरूद्ध कर देते हैं तब *लैगून* (Lagoon) निर्मित होते हैं। कालांतर में लैगून स्थल से बहाए गए तलछट से भर जाता है और तटीय मैदान की रचना होती है।

निम्न अवसादी तट

निचले अवसादी तटों के सहारे नदियाँ तटीय मैदान एवं डेल्टा बनाकर अपनी लंबाई बढ़ा लेती हैं। कहीं-कहीं लैगून व ज्वारीय सँकरी खाड़ी के रूप में जल भराव के अतिरिक्त तटरेखा सम/चिकनी होती है। सागरोन्मुख स्थल मंद ढाल लिए होता है। तटों के साथ समुद्री पंक व दलदल पाए जाते हैं। इन तटों पर निक्षेपित स्थलाकृतियों की बहुतायत होती है।

जब मंद ढाल वाले अवसादी तटों पर तरंगें अवनमित होती हैं तो तल के अवसाद भी दोलित होते हैं और इनके परिवहन से अवरोधिकाएँ, लैगून व स्पिट निर्मित होते हैं। लैगून कालांतर में दलदल में परिवर्तित हो जाते हैं जो बाद में तटीय मैदान बनते हैं। इन निक्षेपित स्थलाकृतियों का बना रहना अवसादी पदार्थों की स्थायी एवं लगातार आपूर्ति पर निर्भर करता है। अवसादों के अतिरिक्त तूफान व सुनामी लहरें इनमें अभूतपूर्व परिवर्तन लाती हैं। बड़ी नदियाँ जो अधिक नद्यभार लाती हैं, निचले अवसादी तटों के साथ डेल्टा बनाती हैं।

हमारे देश का पश्चिमी तट ऊँचा चट्टानी निवर्तन (Retreating) तट है। पश्चिमी तट पर अपरदित आकृतियाँ बहुतायत में हैं। भारत के पूर्वी तट निचले अवसादी तट हैं। इन तटों पर निक्षेपित स्थलाकृतियाँ पाई जाती हैं। इन दोनों तटों की उत्पत्ति व प्रवृत्ति को जानने के लिए आप 'भारत-भौतिक पर्यावरण' पुस्तक पढ़ें।

उच्च चट्टानी व निम्न अवसादी तटों की प्रक्रियाओं व स्थलाकृतियों के संदर्भ में विभिन्न अंतर क्या है?

अपरदित स्थलरूप

भृगु (Cliff), वेदिकाएँ (Terraces), कंदराएँ (Caves) तथा स्टैक (Stack)

ऐसे तट जहाँ अपरदन प्रमुख प्रक्रिया है, वहाँ प्राय: दो मुख्य आकृतियाँ– तरंग घर्षित भृगु व वेदिकाएँ पाई जाती हैं। लगभग सभी समुद्र भृगु की ढाल तीव्र होती है जो कुछ मीटर से लेकर 30 मीटर या उससे अधिक हो सकती है। इनकी तलहटी पर एक मंद ढाल वाला या समतल प्लेटफार्म होता है, जो समुद्री भृगु से प्राप्त शैल मलबे से ढका होता है। अगर ये प्लेटफॉर्म तरंग की औसत ऊँचाई से अधिक ऊँचाई पर मिलते हैं तो इन्हें तरंग घर्षित वेदिकाएँ कहते हैं। भृगु की कठोर चट्टान के विरूद्ध जब तरंगें टकराती हैं तो भृगु के आधार पर रिक्त स्थान बनाती हैं और इसे गहराई तक खोखला कर देती हैं जिससे समुद्री कंदराएँ बनती हैं। इन कंदराओं की छत ध्वस्त होने से समुद्री भृगु स्थल की ओर हटते हैं। भृगु के निवर्तन से चट्टानों के कुछ अवशेष तटों पर अलग-थलग छूट जाते हैं। ऐसी अलग-थलग प्रतिरोधी चट्टानें जो कभी भृगु के भाग थे, समुद्री स्टैक कहलाते हैं। अन्य स्थलरूपों की भाँति समुद्री स्टैक भी अस्थायी आकृतियाँ हैं जो तरंग अपरदन द्वारा समुद्री पहाड़ियों व भृगु की भाँति धीरे-धीरे तंग समुद्री मैदानों में परिवर्तित हो जाती हैं और स्थल से प्रवाहित जलोढ़ से आच्छादित रेत व शिंगिल चौड़े पुलिन (Beach) में परिवर्तित हो जाते हैं।

निक्षेपित स्थलरूप

पुलिन (Beaches) और टिब्बे (Dunes)

तटों की प्रमुख विशेषता पुलिन की उपस्थिति है; यद्यपि ऊबड़-खाबड़ तटों पर भी ये टुकड़ों में पाए जाते हैं। वे अवसाद जिनसे पुलिन निर्मित होते हैं, अधिकतर थल से नदियों व सरिताओं द्वारा अथवा तरंगों के अपरदन द्वारा बहाकर लाए गए पदार्थ होते हैं। पुलिन अस्थाई स्थलाकृतियाँ हैं। कुछ रेत पुलिन (Sand beaches) जो स्थायी प्रतीत होते हैं; किसी और मौसम में स्थूल कंकड़-पत्थरों की तंग पट्टी में परिवर्तित हो जाते हैं। अधिकतर पुलिन रेत के आकार के छोटे कणों से बने होते हैं। शिंगिल पुलिन में अत्यधिक छोटी गुटिकाएँ तथा गोलाश्मिकाएँ होती हैं।

पुलिन के ठीक पीछे, पुलिन तल से उठाई गई रेत टिब्बे (Dunes) के रूप में निक्षेपित होती है। तटरेखा के

समानांतर लंबाई में कटकों के रूप में बने रेत, टिब्बे निम्न तलछटी तटों पर अकसर देखे जा सकते हैं।

रोधिका (Bars), रोध (Barriers) तथा स्पिट (Spits)

समुद्री अपतट पर, तट के समांतर पाई जाने वाली रेत और शिंगिल की कटक अपतट समानांतर पाई जाने वाली रेत और शिंगिल की कटक को अपतट रोधिक (Offshore bar) कहलाती है। ऐसी अपतटीय रोधिका जो रेत के अधिक निक्षेपण से ऊपर दिखाई पड़ती है उसे *रोध-रोधिका* (Barrier bar) कहते हैं। अपतटीय रोध व रोधिकाएँ प्राय: या तो खाड़ी के प्रवेश पर या नदियों के मुहानों के सम्मुख बनती हैं। कई बार इन रोधिकाओं का एक सिरा खाड़ी से जुड़ जाता है तो इन्हें *स्पिट* कहते हैं (चित्र 7.15) शीर्षस्थल से एक सिरा जुड़ने पर भी स्पिट विकसित होती है। रोधिकाएँ, रोध व स्पिट धीरे-धीरे खाड़ी के मुख पर बढ़ते रहते हैं जिससे खाड़ी का समुद्र में खुलने वाला द्वार तंग हो जाता है तथा कालांतर में खाड़ी एक लैगून में परिवर्तित हो जाती है। लैगून भी धीरे-धीरे स्थल से लाए गये तलछटों से या पुलिन से वायु द्वारा लाए गये तलछट से लैगून के स्थान पर एक चौड़े व विस्तृत तटीय मैदान में विकसित हो जाते हैं।

चित्र 7.15 : उपग्रहीय चित्र-गोदावरी नदी डेल्टा का स्पिट

क्या आप जानते हैं कि समुद्र के अपतट पर बनी रोधिकाएँ तूफान और सुनामी लहरों के आक्रमण के समय सबसे पहले बचाव करती हैं क्योंकि ये रोधिकाएँ इनकी प्रबलता को कम कर देती हैं। इसके बाद रोध, पुलिन, पुलिन स्तूप तथा मैंग्रोव हैं जो इनकी प्रबलता को झेलते हैं। अत: अगर हम तटों के किनारों पर पाए जाने वाले मैंग्रोव व तलछट (Sedimentary budget) से छेड़छाड़ करते हैं तो ये तटीय स्थलाकृतियाँ अपरदित हो जाएँगी तथा मानव व मानवीय बस्तियों को तूफान व सुनामी लहरों के सीधे व प्रथम प्रहार झेलने होंगे।

पवनें (WINDS)

उष्ण मरुस्थलों के दो प्रभावशाली अनाच्छादनकर्ता कारकों में पवन एक महत्त्वपूर्ण अपरदन का कारक है। मरुस्थलीय धरातल शीघ्र गर्म और शीघ्र ठंडे हो जाते हैं। उष्ण धरातलों के ठीक ऊपर वायु गर्म हो जाती है जिससे हल्की गर्म हवा प्रक्षुब्धता के साथ ऊर्ध्वाधर गति करती है। इसके मार्ग में कोई रुकावट आने पर भँवर, वातावृत्त बनते हैं तथा अनुवात एवं उत्त्वात प्रवाह उत्पन्न होता है। पवनें मरुस्थलीय धरातल के साथ-साथ भी तीव्र गति से चलती हैं और उनके मार्ग में रूकावटें पवनों में विक्षोभ उत्पन्न करते हैं। नि:संदेह तूफानी पवन अधिक विनाशकारी होता है। पवन अपवाहन, घर्षण आदि द्वारा अपरदन करती हैं। अपवाहन में पवन धरातल से चट्टानों के छोटे कण व धूल उठाती हैं। वायु की परिवहन की प्रक्रिया में रेत व बजरी आदि औजारों की तरह धरातलीय चट्टानों पर चोट पहुँचाकर घर्षण करती हैं। जब वायु में उपस्थित रेत के कण चट्टानों के तल से टकराते हैं तो इसका प्रभाव पवन के संवेग पर निर्भर करता है। यह प्रक्रिया *बालू घर्षण* (Sand blasting) जैसी है। मरुस्थलों में पवनें कई रोचक अपरदनात्मक व निक्षेपणात्मक स्थलरूप बनाती हैं।

वास्तव में मरुस्थलों में अधिकतर स्थलाकृतियों का निर्माण बृहत् क्षरण और प्रवाहित जल की चादर बाढ़ (Sheet flood) से होता है। यद्यपि मरुस्थलों में वर्षा बहुत कम होती है, लेकिन यह अल्प समय में मूसलाधार वर्षा (Torrential) के रूप में होती है। मरुस्थलीय चट्टानें अत्यधिक वनस्पति विहीन होने के कारण तथा दैनिक तापांतर के कारण यांत्रिक व रासायनिक अपक्षय से अधिक प्रभावित होती है। अत: इनका शीघ्र क्षय होता है और वेग प्रवाह इस अपक्षय जनित मलबे को आसानी से बहा ले जाते हैं। अर्थात् मरुस्थलों में अपक्षय जनित मलबा केवल पवन द्वारा ही नहीं, वरन वर्षा व वृष्टि धोवन (Sheet wash) से भी प्रवाहित होता है। पवन केवल महीन मलबे का ही अपवाहन कर सकती हैं और बृहत् अपरदन मुख्यत: परत बाढ़ या वृष्टि धोवन से ही

संपन्न होता है। मरुस्थलों में नदियाँ चौड़ी, अनियमित तथा वर्षा के बाद अल्प समय तक ही प्रवाहित होती हैं।

अपरदनात्मक स्थलरूप

पेडीमेंट (Pediment) और पदस्थली (Pediplain)

मरुस्थलों में भूदृश्य का विकास मुख्यत: पेडीमेंट का निर्माण व उसका ही विकसित रूप है। पर्वतों के पाद पर मलबे रहित अथवा मलबे सहित मंद ढाल वाले चट्टानी तल *पेडीमेंट* कहलाते हैं। पेडीमेंट का निर्माण पर्वतीय अग्रभाग के अपरदन मुख्यत: सरिता के क्षैतिज अपरदन व चादर बाढ़ दोनों के संयुक्त अपरदन से होता है।

अपरदन भूसंहति के तीव्र ढाल वाले कोर के साथ-साथ प्रारंभ होता है या विवर्तनिकी द्वारा नियंत्रित कटावों के तीव्र ढाल वाले पार्श्व पर अपरदन प्रारंभ होता है। जब एक बार एक तीव्र मंद ढाल के साथ पेडीमेंट का निर्माण हो जाता है जिसके पीछे एक भृगु या मुक्त पार्श्व होता है तो कटाव के कारण मंद ढाल तथा मुक्त पार्श्व पीछे हटने लगता है। अपरदन की इस पद्धति को पृष्ठक्षरण (Backwasting) के द्वारा की गई ढाल की समानांतर निवर्तन (पीछे हटना) क्रिया कहते हैं। अत: समानांतर ढाल निवर्तन द्वारा पर्वतों के अग्रभाग को अपरदित करते हुए पेडीमेंट आगे बढ़ते हैं तथा पर्वत घिसते हुए पीछे हटते हैं और धीरे-धीरे पर्वतों का अपरदन हो जाता है और केवल *इंसेलबर्ग* (Inselberg) निर्मित होते हैं जो कि पर्वतों के अवशिष्ट रूप हैं। इस प्रकार मरुस्थलीय प्रदेशों में एक उच्च धरातल, आकृति विहीन, मैदान में परिवर्तित हो जाता है जिसे *पेडीप्लेन/पदस्थली* कहते हैं।

प्लाया (Playa)

मरुभूमियों में मैदान (Plains) प्रमुख स्थलरूप हैं। पर्वतों व पहाड़ियों से घिरे बेसिनों में अपवाह मुख्यत: बेसिन के मध्य में होता है तथा बेसिन के किनारों से लगातार लाए हुए अवसाद जमाव के कारण बेसिन के मध्य में लगभग समतल मैदान की रचना हो जाती है। पर्याप्त जल उपलब्ध होने पर यह मैदान उथले जल क्षेत्र में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार की उथली जल झीलें ही *प्लाया* (Playa) कहलाती हैं। प्लाया में वाष्पीकरण के कारण जल अल्प समय के लिए ही रहता है और अकसर प्लाया में लवणों के समृद्ध निक्षेप पाए जाते हैं। ऐसे प्लाया मैदान, जो लवणों से भरें हों, **कल्लर भूमि या क्षारीय क्षेत्र (Alkali flats)** कहलाते हैं।

अपवाहन गर्त (Deflation hollows) तथा गुहा (Caves)

पवनों के एक ही दिशा में स्थायी प्रवाह से चट्टानों के अपक्षय जनित पदार्थ या असंगठित मिट्टी का अपवाहन होता है। इस प्रक्रिया में उथले गर्त बनते हैं जिन्हें *अपवाहन गर्त* कहते हैं। अपवाहन प्रक्रिया से चट्टानी धरातल पर छोटे गड्ढे या गुहिकाएँ भी बनती हैं। तीव्र वेग पवन के साथ उड़ने वाले धूल कण अपघर्षण से चट्टानी तल पर पहले उथले गर्त जिन्हें **वात-गर्त** (blowouts) कहते हैं; बनाते हैं और इनमें से कुछ वात-गर्त गहरे और विस्तृत हो जाते है, जिन्हें *गुहा* (Caves) कहते हैं।

छत्रक (Mushroom), टेबल तथा पीठिका शैल

मरुस्थलों में अधिकतर चट्टानें पवन अपवाहन व अपघर्षण द्वारा शीघ्रता से कट जाती हैं और कुछ प्रतिरोधी चट्टानों के घिसे हुए अवशेष जिनके आधार पतले व ऊपरी भाग विस्तृत और गोल, टोपी के आकार के होते है, छत्रक के आकार में पाए जाते हैं। कभी-कभी प्रतिरोधी चट्टानों का ऊपरी हिस्सा मेज की भाँति विस्तृत होता है और अधिकतर ऐसे अवशेष पीठिका की भाँति खड़े रहते हैं।

बाढ़ चादर व पवन के द्वारा बनाए गए अपरदनात्मक स्थलरूपों को वर्णित करें।

निक्षेपित स्थलरूप

पवन एक छँटाई करने वाला कारक (Sorting agent) भी है, अर्थात पवन द्वारा बारीक रेत का परिवहन अधिक ऊँचाई व अधिक दूरी तक होता है। पवनों के वेग के अनुरूप मोटे आकार के कण धरातल के साथ घर्षण करते हुए चले आते हैं और अपने टकराने से अन्य कणों को ढीला कर देते हैं, जिसे साल्टेशन कहते हैं। हवा में लटकते महीन कण अपेक्षाकृत अधिक दूरी तक उड़ा कर ले जाए जा सकते हैं। चूँकि, पवनों द्वारा कणों का परिवहन उनके आकार व भार के अनुरूप होता है, अत: पवनों की परिवहन प्रक्रिया में ही पदार्थों छँटाई का काम हो जाता है। जब पवन की गति घट जाती है या लगभग रुक जाती है तो कणों के आकार के आधार पर निक्षेपण प्रक्रिया

आरंभ होती है। अत: पवन के निक्षेपित स्थलरूपों में कणों की महीनता भी देखी जा सकती है। रेत की आपूर्ति व स्थायी पवन दिशा के आधार पर शुष्क प्रदेशों में पवन निक्षेपित स्थलरूप विकसित होते हैं।

बालू-टिब्बे (Sand dunes)

उष्ण शुष्क मरुस्थल बालू-टिब्बों के निर्माण के उपयुक्त स्थान हैं। इनके निर्माण के लिए अवरोध का होना भी अत्यंत आवश्यक है। बालू-टिब्बे विभिन्न प्रकार के होते हैं (चित्र 7.16)।

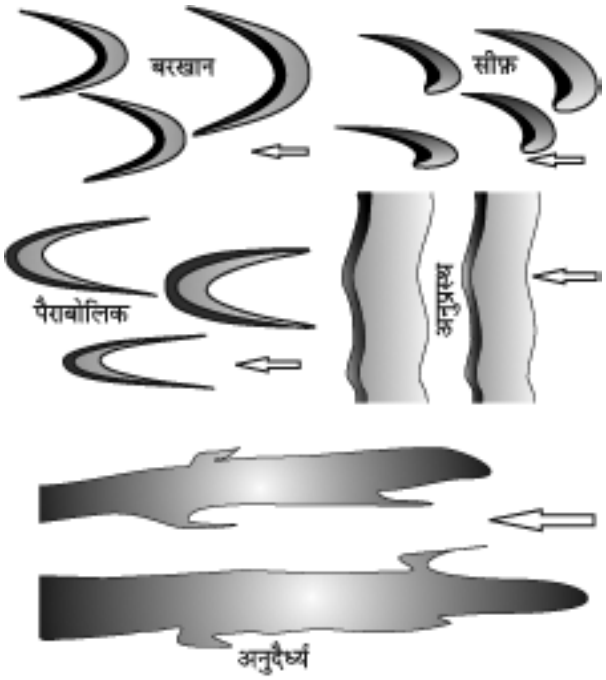

चित्र 7.16 : बालू-टिब्बों के विभिन्न रूप। तीर द्वारा वायु दिशा का चित्रण

नव चंद्राकार टिब्बे जिनकी भुजाएँ पवनों की दिशा में निकली होते हैं; **बरखान** कहलाते हैं। जहाँ रेतीले धरातल पर आंशिक रूप से वनस्पति भी पाई जाती हैं वहाँ **परवलयिक** (Parabolic) बालुका-टिब्बों का निर्माण होता है, अर्थात् अगर पवनों की दिशा स्थायी रहे तो परवलयिक बालू-टिब्बे बरखान से भिन्न आकृति वाले होते हैं; सीफ़ (Seif) बरखान की ही भांति होते हैं। सीफ बालू-टिब्बों में केवल एक ही भुजा होती है। ऐसा पवनों की दिशा में बदलाव के कारण होता है। सीफ की यह भुजा ऊँची व अधिक लंबाई में विकसित हो सकती है। जब रेत की आपूर्ति कम तथा पवनों की दिशा स्थायी रहे तो अनुदैर्ध्य टिब्बे (Longitudinal dunes) बनते हैं। ये अत्यधिक लंबाई व कम ऊँचाई के लम्बायमान कटक प्रतीत होते हैं। अनुप्रस्थ टिब्बे (Transverse dunes) प्रचलित पवनों की दिशा के समकोण पर बनते हैं। इन टिब्बों के निर्माण में पवनों की दिशा निश्चित और रेत का स्रोत पवनों की दिशा के समकोण पर हों। ये अधिक लंबे व कम ऊँचाई वाले होते हैं। जब रेत की आपूर्ति अधिक हो तो अधिकतर नियमित बालु-टिब्बे एक-दूसरे में विलीन हो जाते हैं और उनकी वास्तविक आकृति व अनोखी विशेषताएँ नहीं रहतीं। मरुस्थलों में अधिकतर टिब्बों का स्थानांतरण होता रहता है और इनमें से कुछ विशेषकर मानव बस्तियों के निकट स्थित हो जाते हैं।

अभ्यास

1. बहुवैकल्पिक प्रश्न :

(i) स्थलरूप विकास की किस अवस्था में अधोमुख कटाव प्रमुख होता है?
(क) तरुणावस्था (ख) प्रथम प्रौढ़ावस्था
(ग) अंतिम प्रौढ़ावस्था (घ) वृद्धावस्था

(ii) एक गहरी घाटी जिसकी विशेषता सीढ़ीनुमा खड़े ढाल होते हैं; किस नाम से जानी जाती है :
(क) U आकार घाटी (ख)अंधी घाटी
(ग) गॉर्ज (घ) कैनियन

(iii) निम्न में से किन प्रदेशों में रासायनिक अपक्षय प्रक्रिया यांत्रिक अपक्षय प्रक्रिया की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली होती है :

(क) आर्द्र प्रदेश (ख) शुष्क प्रदेश

(ग) चूना-पत्थर प्रदेश (घ) हिमनद प्रदेश

(iv) निम्न में से कौन सा वक्तव्य लेपीज (Lapies) शब्द को परिभाषित करता है :

(क) छोटे से मध्यम आकार के उथले गर्त

(ख) ऐसे स्थलरूप जिनके ऊपरी मुख वृत्ताकार व नीचे से कीप के आकार के होते हैं।

(ग) ऐसे स्थलरूप जो धरातल से जल के टपकने से बनते हैं।

(घ) अनियमित धरातल जिनके तीखे कटक व खाँच हों।

(v) गहरे, लंबे व विस्तृत गर्त या बेसिन जिनके शीर्ष दीवार खड़े ढाल वाले व किनारे खड़े व अवतल होते हैं, उन्हें क्या कहते हैं?

(क)सर्क (ख) पार्श्विक हिमोढ़

(ग) घाटी हिमनद (घ) एस्कर

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए :

(i) चट्टानों में अध:कर्तित विसर्प और मैदानी भागों में जलोढ़ के सामान्य विसर्प क्या बताते हैं?

(ii) घाटी रंध्र अथवा युवाला का विकास कैसे होता है?

(iii) चूनायुक्त चट्टानी प्रदेशों में धरातलीय जल प्रवाह की अपेक्षा भौम जल प्रवाह अधिक पाया जाता है, क्यों?

(iv) हिमनद घाटियों में कई रैखिक निक्षेपण स्थलरूप मिलते हैं। इनकी अवस्थिति व नाम बताएँ।

(v) मरुस्थली क्षेत्रों में पवन कैसे अपना कार्य करती है? क्या मरुस्थलों में यही एक कारक अपरदित स्थलरूपों का निर्माण करता है।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दीजिए :

(i) आर्द्र व शुष्क जलवायु प्रदेशों में प्रवाहित जल ही सबसे महत्त्वपूर्ण भू-आकृतिक कारक है। विस्तार से वर्णन करें।

(ii) चूना चट्टानें आर्द्र व शुष्क जलवायु में भिन्न व्यवहार करती हैं क्यों? चूना प्रदेशों में प्रमुख व मुख्य भू-आकृतिक प्रक्रिया कौन सी हैं और इसके क्या परिणाम हैं?

(iii) हिमनद ऊँचे पर्वतीय क्षेत्रों को निम्न पहाड़ियों व मैदानों में कैसे परिवर्तित करते हैं या किस प्रक्रिया से यह कार्य सम्पन्न होता है बताएँ?

परियोजना कार्य

अपने क्षेत्र के आसपास के स्थलरूप, उनके पदार्थ तथा वह जिन प्रक्रियाओं से निर्मित है, पहचानें।

इकाई
IV

जलवायु

इस इकाई के विवरण :

वायुमंडल – संघटन एवं संरचना; मौसम एवं जलवायु के तत्व।

सूर्यातप – आपतन कोण एवं वितरण, पृथ्वी का ऊष्मा बजट – वायुमंडल का गर्म एवं ठंडा होना (संचालन एवं संवहन, पार्थिव विकिरण, अभिवहन); तापमान : तापमान को प्रभावित करने वाले कारक, तापमान का वितरण – क्षैतिज एवं ऊर्ध्वाधर, तापमान का व्युत्क्रमण

वायुदाब–वायुदाब पट्टियाँ, पवनें – भूमंडलीय, मौसमी एवं स्थानिक, वायुराशियाँ एवं वाताग्र; उष्णकटिबंधीय एवं बहिरूष्ण कटिबंधीय चक्रवात।

वर्षण : वाष्पीकरण, संघनन–ओस, पाला, धुंध, कोहरा एवं मेघ; वर्षा–प्रकार एवं विश्व वितरण

विश्व जलवायु – वर्गीकरण (कोपेन), ग्रीनहाउस प्रभाव, भूमंडलीय ऊष्मन एंव जलवायु परिवर्तन।

अध्याय

8

वायुमंडल का संघटन तथा संरचना

क्या कोई व्यक्ति वायु के बिना रह सकता है? हम लोग दिन में दो-तीन बार भोजन करते हैं तथा कई बार पानी पीते हैं, लेकिन साँस लगभग प्रत्येक सेकेंड लेते रहते हैं। जीवित रहने के लिए वायु सभी जीवों के लिए आवश्यक है। मनुष्य जैसे कुछ जीव बिना भोजन और पानी लिये कुछ समय तक जीवित रह सकते हैं, लेकिन साँस लिये बिना कुछ मिनट भी जीवित रहना सम्भव नहीं होता। यही कारण है कि हमें वायुमंडल का विस्तृत ज्ञान होना चाहिए। वायुमंडल विभिन्न प्रकार के गैसों का मिश्रण है और यह पृथ्वी को सभी ओर से ढके हुए है। इसमें मनुष्यों एवं जंतुओं के जीवन के लिए आवश्यक गैसें जैसे ऑक्सीजन तथा पौधों के जीवन के लिए कार्बन डाईऑक्साइड पाई जाती है। वायु पृथ्वी के द्रव्यमान का अभिन्न भाग है तथा इसके कुल द्रव्यमान का 99 प्रतिशत पृथ्वी की सतह से 32 कि॰मी॰ की ऊँचाई तक स्थित है। वायु रंगहीन तथा गंधहीन होती है तथा जब यह पवन की तरह बहती है, तभी हम इसे महसूस कर सकते हैं।

वायुमंडल का संघटन

वायुमंडल गैसों, जलवाष्प एवं धूल कणों से बना है। सारणी 8.1 में हवा में उपस्थित उन गैसों का विवरण है, जो वायुमंडल के निचले भाग में पाई जाती हैं। वायुमंडल की ऊपरी परतों में गैसों का अनुपात इस प्रकार बदलता है जैसे कि 120 कि॰मी॰ की ऊँचाई पर ऑक्सीजन की मात्रा नगण्य हो जाती है। इसी प्रकार, कार्बन डाईऑक्साइड एवम् जलवाष्प पृथ्वी की सतह से 90 कि॰मी॰ की ऊँचाई तक ही पाये जाते हैं।

गैस

कार्बन डाईऑक्साइड मौसम विज्ञान की दृष्टि से बहुत ही

तालिका 8.1 : वायुमंडल की स्थायी गैसें

घटक	*सूत्र*	*द्रव्यमान प्रतिशत*
नाइट्रोजन	N_2	78.8
ऑक्सीजन	O_2	20.95
आर्गन	Ar	0.93
कार्बन डाईऑक्साइड	CO_2	0.036
नीऑन	Ne	0.002
हिलीयम	He	0.0005
क्रेप्टो	Kr	0.001
जेनन	Xe	0.00009
हाईड्रोजन	H_2	0.00005

महत्त्वपूर्ण गैस है, क्योंकि यह सौर विकिरण के लिए पारदर्शी है, लेकिन पार्थिव विकिरण के लिए अपारदर्शी है। यह सौर विकिरण के एक अंश को सोख लेती है तथा इसके कुछ भाग को पृथ्वी की सतह की ओर प्रतिबिंबित कर देती है। यह ग्रीन हाऊस प्रभाव के लिए पूरी तरह उत्तरदायी है। दूसरी गैसों का आयतन स्थिर है, जबकि पिछले कुछ दशकों में मुख्यत: जीवाश्म ईंधन को जलाये जाने के कारण कार्बन डाईऑक्साइड के आयतन में लगातार वृद्धि हो रही है। इसने हवा के ताप को भी बढ़ा दिया है। ओज़ोन वायुमंडल का दूसरा महत्त्वपूर्ण घटक है जो कि पृथ्वी की सतह से 10 से 50 किलोमीटर की ऊँचाई के बीच पाया जाता है। यह एक फिल्टर की तरह कार्य करता है तथा सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर उनको पृथ्वी की सतह पर पहुँचने से रोकता है।

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि वायुमंडल में ओज़ोन कि अनुपस्थिति से हमारे ऊपर क्या प्रभाव होगा?

जलवाष्प

जलवाष्प वायुमंडल में उपस्थित ऐसी परिवर्तनीय गैस है, जो ऊँचाई के साथ घटती जाती है। गर्म तथा आर्द्र उष्ण कटिबंध में यह हवा के आयतन का 4 प्रतिशत होती है, जबकि ध्रुवों जैसे ठंडे तथा रेगिस्तानों जैसे शुष्क प्रदेशों में यह हवा के आयतन के 1 प्रतिशत भाग से भी कम होती है। विषुवत् वृत्त से ध्रुव की तरफ जलवाष्प की मात्रा कम होती जाती है। यह सूर्य से निकलने वाले ताप के कुछ भाग को अवशोषित करती है तथा पृथ्वी से निकलने वाले ताप को संग्रहित करती है। इस प्रकार यह एक कंबल की तरह कार्य करती है तथा पृथ्वी को न तो अधिक गर्म तथा न ही अधिक ठंडा होने देती है। जलवाष्प वायु को स्थिर और अस्थिर होने में भी योगदान देती है।

धूलकण

वायुमंडल में छोटे-छोटे ठोस कणों को भी रखने की क्षमता होती है। ये छोटे कण विभिन्न स्रोतों जैसे- समुद्री नमक, महीन मिट्टी, धुएँ की कालिमा, राख, पराग, धूल तथा उल्काओं के टूटे हुए कण से निकलते हैं। धूलकण प्रायः वायुमंडल के निचले भाग में मौजूद होते हैं, फिर भी संवहनीय वायु प्रवाह इन्हें काफी ऊँचाई तक ले जा सकता है। धूलकणों का सबसे अधिक जमाव उपोष्ण और शीतोष्ण प्रदेशों में सूखी हवा के कारण होता है, जो विषुवत् और ध्रुवीय प्रदेशों की तुलना में यहाँ अधिक मात्रा में होते है। धूल और नमक के कण आर्द्रताग्राही केंद्र की तरह कार्य करते हैं जिसके चारों ओर जलवाष्प संघनित होकर मेघों का निर्माण करती हैं।

वायुमंडल की संरचना

वायुमंडल अलग-अलग घनत्व तथा तापमान वाली विभिन्न परतों का बना होता है। पृथ्वी की सतह के पास घनत्व अधिक होता है, जबकि ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ यह घटता जाता है। तापमान की स्थिति के अनुसार वायुमंडल को पाँच विभिन्न संस्तरों में बाँटा गया है। ये हैं: क्षोभमंडल, समतापमंडल, मध्यमंडल, बाह्य वायुमंडल तथा बहिर्मंडल।

क्षोभमंडल वायुमंडल का सबसे नीचे का संस्तर है। इसकी ऊँचाई सतह से लगभग 13 कि॰मी॰ है तथा यह ध्रुव के निकट 8 कि॰मी॰ तथा विषुवत् वृत्त पर 18 कि॰मी॰ की ऊँचाई तक है। क्षोभमंडल की मोटाई विषुवत् वृत्त पर सबसे अधिक है, क्योंकि तेज वायुप्रवाह के कारण ताप का अधिक ऊँचाई तक संवहन किया जाता है। इस संस्तर में धूलकण तथा जलवाष्प मौजूद होते हैं। मौसम में परिवर्तन इसी संस्तर में होता है। इस संस्तर में प्रत्येक 165 मी. की ऊँचाई पर तापमान 1° से॰ घटता जाता है। जैविक क्रिया के लिए यह सबसे महत्त्वपूर्ण संस्तर है।

क्षोभमंडल और समतापमंडल को अलग करने वाले भाग को *क्षोभसीमा* कहते हैं। विषुवत् वृत्त के ऊपर क्षोभ सीमा में हवा का तापमान –80° से॰ और ध्रुव के ऊपर –45° से॰ होता है। यहाँ पर तापमान स्थिर होने के कारण इसे क्षोभसीमा कहा जाता है। समतापमंडल इसके ऊपर 50 कि॰मी॰ की ऊँचाई तक पाया जाता है। समतापमंडल का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह है कि इसमें ओज़ोन परत पायी जाती है। यह परत पराबैंगनी किरणों को अवशोषित कर पृथ्वी को ऊर्जा के तीव्र तथा हानिकारक तत्त्वों से बचाती है।

मध्यमंडल, समतापमंडल के ठीक ऊपर 80 कि॰मी॰ की ऊँचाई तक फैला होता है। इस संस्तर में भी ऊँचाई के साथ-साथ तापमान में कमी होने लगती है और 80 किलोमीटर की ऊँचाई तक पहुँचकर यह –100° से॰ हो

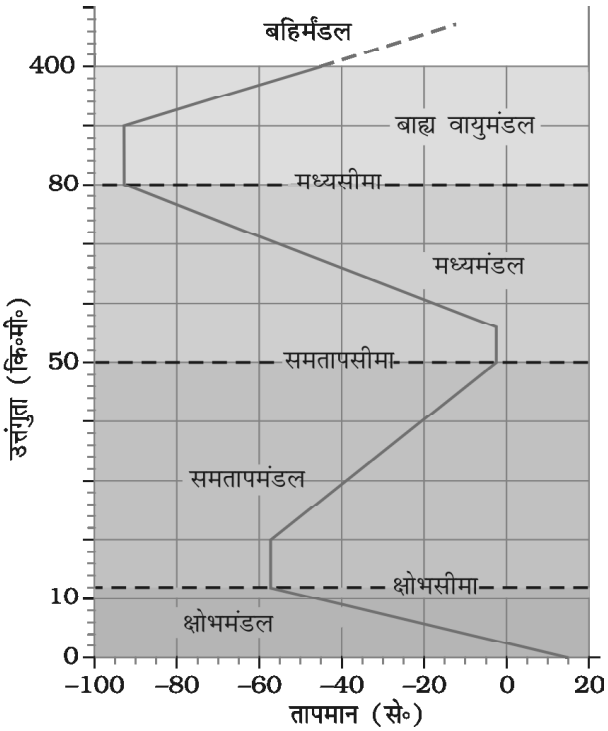

चित्र 8.1 : वायुमंडल की संरचना

जाता है। मध्यमंडल की ऊपरी परत को *मध्यसीमा* कहते हैं। आयनमंडल मध्यमंडल के ऊपर 80 से 400 किलोमीटर के बीच स्थित होता है। इसमें विद्युत आवेशित कण पाये जाते हैं, जिन्हें आयन कहते हैं तथा इसीलिए इसे आयनमंडल के नाम से जाना जाता है। पृथ्वी के द्वारा भेजी गई रेडियो तरंगें इस संस्तर के द्वारा वापस पृथ्वी पर लौट आती हैं। यहाँ पर ऊँचाई बढ़ने के साथ ही तापमान में वृद्धि शुरू हो जाती है। वायुमंडल का सबसे ऊपरी संस्तर, जो बाह्यमंडल के ऊपर स्थित होता है उसे बहिर्मंडल कहते हैं। यह सबसे ऊँचा संस्तर है तथा इसके बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। इस संस्तर में मौजूद सभी घटक विरल हैं, जो धीरे-धीरे बाहरी अंतरिक्ष में मिल जाते हैं। यद्यपि वायुमंडल के सभी संस्तर हमें प्रभावित करते हैं फिर भी भूगोलवेत्ता वायुमंडल के पहले दो संस्तरों का ही अध्ययन करते हैं।

मौसम और जलवायु के तत्त्व

ताप, दाब, हवा, आर्द्रता, बादल और वर्षण, वायुमंडल के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं, जो पृथ्वी पर मनुष्य के जीवन को प्रभावित करते हैं। इन तत्त्वों के बारे में विस्तृत जानकारी अध्याय 9, 10 और 11 में दी गई है।

अभ्यास

1. बहुवैकल्पिक प्रश्न :

(i) निम्नलिखित में से कौन-सी गैस वायुमंडल में सबसे अधिक मात्रा में मौजूद है?
(क) ऑक्सीजन (ख) आर्गन
(ग) नाइट्रोजन (घ) कार्बन डाईऑक्साइड

(ii) वह वायुमंडलीय परत जो मानव जीवन के लिये महत्त्वपूर्ण है :
(क) समतापमंडल (ख) क्षोभमंडल
(ग) मध्यमंडल (घ) आयनमंडल

(iii) समुद्री नमक, पराग, राख, धुएँ की कालिमा, महीन मिट्टी- किससे संबंधित हैं?
(क) गैस (ख) जलवाष्प
(ग) धूलकण (घ) उल्कापात

(iv) निम्नलिखित में से कितनी ऊँचाई पर ऑक्सीजन की मात्रा नगण्य हो जाती है?
(क) 90 कि॰मी॰ (ख) 100 कि॰मी॰
(ग) 120 कि॰मी॰ (घ) 150 कि॰मी॰

(v) निम्नलिखित में से कौन-सी गैस सौर विकिरण के लिए पारदर्शी है तथा पार्थिव विकिरण के लिए अपारदर्शी?
(क) ऑक्सीजन (ख) नाइट्रोजन
(ग) हीलियम (घ) कार्बन डाईऑक्साइड

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए :

(i) वायुमंडल से आप क्या समझते हैं?
(ii) मौसम एवं जलवायु के तत्त्व कौन-कौन से हैं?
(iii) वायुमंडल की संरचना के बारे में लिखें।
(iv) वायुमंडल के सभी संस्तरों में क्षोभमंडल सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों है?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दीजिए :

(i) वायुमंडल के संघटन की व्याख्या करें।
(ii) वायुमंडल की संरचना का चित्र खींचे और व्याख्या करें।

अध्याय

9

सौर विकिरण, ऊष्मा संतुलन एवं तापमान

क्या आप अपने चारों तरफ वायु को महसूस करते है? क्या आप जानते हैं कि हम वायु के एक बहुत भारी पुलिंदे (Pile) के तल में रहते हैं? हम वायु में साँस लेते हुए साँस द्वारा वायु को बाहर निकालते हैं, परंतु उसे महसूस तभी करते हैं, जब यह गतिमान होती है। इस का तात्पर्य यह है कि गतिमान वायु ही पवन है। आप जानते हैं कि पृथ्वी चारों ओर से वायु से घिरी हुई है। वायु का यह आवरण ही वायुमंडल है, जो बहुत-सी गैसों से बना है। इन्हीं गैसों के कारण ही पृथ्वी पर जीवन पाया जाता है।

पृथ्वी अपनी ऊर्जा का लगभग संपूर्ण भाग सूर्य से प्राप्त करती है। इसके बदले पृथ्वी सूर्य से प्राप्त ऊर्जा को अंतरिक्ष में वापस विकरित कर देती है। परिणामस्वरूप पृथ्वी न तो अधिक समय के लिए गर्म होती है ओर न ही अधिक ठंडी अत: हम यह पाते हैं कि पृथ्वी के अलग-अलग भागों में प्राप्त ताप की मात्रा समान नहीं होती। इसी भिन्नता के कारण वायुमंडल के दाब में भिन्नता होती है एवं इसी कारण पवनों के द्वारा ताप का स्थानांतरण एक स्थान से दूसरे स्थान पर होता है। इस अध्याय में वायुमंडल के गर्म तथा ठंडे होने की प्रक्रिया एवं परिणामस्वरूप पृथ्वी की सतह पर तापमान के वितरण को समझाया गया है।

सौर विकिरण

पृथ्वी के पृष्ठ पर प्राप्त होने वाली ऊर्जा का अधिकतम अंश लघु तरंगदैर्ध्य के रूप में आता है। पृथ्वी को प्राप्त होने वाली ऊर्जा को 'आगमी सौर विकिरण' या छोटे रूप में '*सूर्यातप*' (Insolation) कहते हैं।

पृथ्वी भू-आभ (Geoid) है। सूर्य की किरणें वायुमंडल के ऊपरी भाग पर तिरछी पड़ती है, जिसके कारण पृथ्वी सौर ऊर्जा के बहुत कम अंश को ही प्राप्त कर पाती है। पृथ्वी औसत रूप से वायुमंडल की ऊपरी सतह पर 1.94 कैलोरी/प्रति वर्ग सेंटीमीटर प्रतिमिनट ऊर्जा प्राप्त करती है। वायुमंडल की ऊपरी सतह पर प्राप्त होने वाली ऊर्जा में प्रतिवर्ष थोड़ा परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन पृथ्वी एवं सूर्य के बीच की दूरी में अंतर के कारण होता है। सूर्य के चारों ओर परिक्रमण के दौरान पृथ्वी 4 जुलाई को सूर्य से सबसे दूर अर्थात् 15 करोड़, 20 लाख किलोमीटर दूर होती है। पृथ्वी की इस स्थिति को अपसौर (Aphelion) कहा जाता है। 3 जनवरी को पृथ्वी सूर्य से सबसे निकट अर्थात् 14 करोड़, 70 लाख किलोमीटर दूर होती है। इस स्थिति को 'उपसौर' (Perihelion) कहा जाता है। इसलिए पृथ्वी द्वारा प्राप्त वार्षिक सूर्यातप (insolation) 3 जनवरी को 4 जुलाई की अपेक्षा अधिक होता है फिर भी सूर्यातप की भिन्नता का यह प्रभाव दूसरे कारकों, जैसे स्थल एवं समुद्र का वितरण तथा वायुमंडल परिसंचरण के द्वारा कम हो जाता है। यही कारण है कि सूर्यातप की यह भिन्नता पृथ्वी की सतह पर होने वाले प्रतिदिन के मौसम परिवर्तन पर अधिक प्रभाव नहीं डाल पाती है।

पृथ्वी की सतह पर सूर्यातप में भिन्नता

सूर्यातप की तीव्रता की मात्रा में प्रतिदिन, हर मौसम और प्रति वर्ष परिवर्तन होता रहता है। सूर्यातप में होने वाली विभिन्नता के कारक हैं : (i) पृथ्वी का अपने अक्ष पर घूमना (ii) सूर्य की किरणों का नति कोण (iii) दिन की अवधि (iv) वायुमंडल की पारदर्शिता (v) स्थल विन्यास। परंतु अंतिम दो कारकों का प्रभाव कम पड़ता है।

यह तथ्य है कि पृथ्वी का अक्ष सूर्य के चारों ओर

परिक्रमण की समतल कक्षा से 66½° का कोण बनाता है, जो विभिन्न अक्षांशों पर प्राप्त होने वाले सूर्यातप की मात्रा को बहुत प्रभावित करता है।

निम्नलिखित सारणी में उत्तरी गोलार्ध में दिये गए अयनांतों पर विभिन्न अक्षांशों पर दिन की अवधि में होने वाले परिवर्तनों पर ध्यान दें

सारणी 9.1 : उत्तरी गोलार्ध में उत्तर अयनांत एवं दक्षिण अयनांत (Summer & winter solstices)

अक्षांश	0°	20°	40°	60°	90°
22 दिसंबर	12घं॰00 मि॰	10घं॰48 मि॰	9घं॰ 8 मि॰	5घं॰ 33 मि॰	0
21 जून	12 घं॰	13घं॰12 मि॰	14घं॰52 मि॰	18घं॰27 मि॰	6 महीने

सूर्यातप की मात्रा को प्रभावित करने वाला दूसरा कारक किरणों का नति कोण है। यह किसी स्थान के अक्षांश पर निर्भर करता है। अक्षांश जितना उच्च होगा (अर्थात् ध्रुवों की ओर) किरणों का नति कोण उतना ही कम होगा। अतएव सूर्य की किरणें तिरछी पड़ेगी। तिरछी किरणों की अपेक्षा सीधी किरणें कम स्थान पर पड़ती हैं।

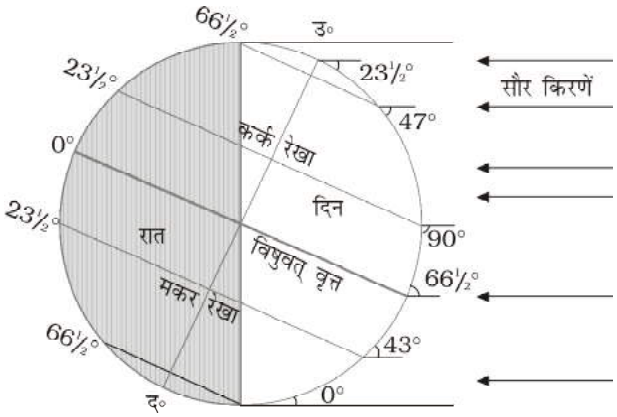

चित्र 9.1 : उत्तर अयनांत

किरणों के अधिक क्षेत्र पर पड़ने के कारण ऊर्जा वितरण बड़े क्षेत्र पर होता है तथा प्रति इकाई क्षेत्र को कम ऊर्जा मिलती है। इसके अतिरिक्त तिरछी किरणों को वायुमंडल की अधिक गहराई से गुज़रना पड़ता है। अत: अधिक अवशोषण, प्रकीर्णन एवं विसरण के द्वारा ऊर्जा का अधिक ह्रास होता है।

सौर विकिरण का वायुमंडल से होकर गुज़रना

लघु तरंगदैर्ध्य वाले सौर-विकिरण के लिए वायुमंडल अधिकांशत: पारदर्शी होता है। पृथ्वी की सतह पर पहुँचने से पहले सूर्य की किरणें वायुमंडल से होकर गुजरती हैं। क्षोभमंडल में मौजूद जलवाष्प, ओज़ोन तथा अन्य किरणें अवरक्त विकिरण (Infrared radiation) को अवशोषित कर लेती हैं। क्षोभमंडल में छोटे निलंबित कण दिखने वाले स्पेक्ट्रम को अंतरिक्ष एवं पृथ्वी की सतह की ओर विकीर्ण कर देते हैं। यही प्रक्रिया आकाश में रंग के लिए उत्तरदायी है। इसी से उदय एवं अस्त होने के समय सूर्य लाल दिखता है तथा आकाश का रंग नीला दिखाई पड़ता है। ऐसा वायुमंडल में प्रकाश के प्रकीर्णन द्वारा संभव होता है।

सूर्यातप का पृथ्वी की सतह पर स्थानिक वितरण

धरातल पर प्राप्त सूर्यातप की मात्रा में उष्ण कटिबंध में 320 वाट/प्रति वर्गमीटर से लेकर ध्रुवों पर 70 वाट/प्रति वर्गमीटर तक भिन्नता पाई जाती है। सबसे अधिक सूर्यातप उपोष्ण कटिबंधीय मरुस्थलों पर प्राप्त होता है, क्योंकि यहाँ मेघाच्छादन बहुत कम पाया जाता है। उष्ण कटिबंध की अपेक्षा विषुवत् वृत्त पर कम मात्रा में सूर्यातप प्राप्त होता है। सामान्यत: एक ही अक्षांश पर स्थित महाद्वीपीय भाग पर अधिक और महासागरीय भाग में अपेक्षतया कम मात्रा में सूर्यातप प्राप्त होता है। शीत ऋतु में मध्य एवं उच्च अक्षांशों पर ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा कम मात्रा में विकिरण प्राप्त होता है।

वायुमंडल का तापन एवं शीतलन

वायुमंडल के गर्म और ठंडा होने के अनेक तरीके हैं।

प्रवेशी सौर विकिरण से गर्म होने के बाद पृथ्वी सतह के निकट स्थित वायुमंडलीय परतों में दीर्घ तरंगों के रूप में ताप का संचरण करती है, पृथ्वी के संपर्क में आने वाली वायु धीरे-धीरे गर्म होती है। निचली परतों के संपर्क में आने वाली वायुमंडल की ऊपरी परतें भी गर्म हो जाती हैं। इस प्रक्रिया को चालन (Conduction) कहा जाता है। चालन तभी होता है जब असमान ताप वाले दो पिंड एक-दूसरे के संपर्क में आते हैं। गर्म पिंड से ठंडे पिंड की ओर ऊर्जा का प्रवाह चलता है। ऊर्जा

का स्थानांतरण तक तब होता रहता है जब तक दोनों पिंडों का तापमान एक समान नहीं हो जाता अथवा उनमें संपर्क टूट नहीं जाता। वायुमंडल की निचली परतों को गर्म करने में चालन (Conduction) महत्त्वपूर्ण है।

पृथ्वी के संपर्क में आई वायु गर्म होकर धाराओं के रूप में लंबवत् उठती है और वायुमंडल में ताप का संचरण करती है। वायुमंडल के लम्बवत् तापन की यह प्रक्रिया संवहन (Convection) कहलाती है, ऊर्जा के स्थानांतरण का यह प्रकार केवल क्षोभमंडल तक सीमित रहता है।

वायु के क्षैतिज संचलन से होने वाला ताप का स्थानांतरण *अभिवहन* (Advection) कहलाता है। लम्बवत् संचलन की अपेक्षा वायु का क्षैतिज संचलन सापेक्षिक रूप से अधिक महत्वपूर्ण होता है। मध्य अक्षांशों में दैनिक मौसम में आने वाली भिन्नताएँ केवल अभिवहन के कारण होती हैं। उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में, विशेषत: उत्तरी भाग में गर्मियों में चलने वाली स्थानीय पवन लू इसी अभिवहन का ही परिणाम है।

पृथ्वी द्वारा प्राप्त प्रवेशी सौर विकिरण, जो लघु तरंगों के रूप में होता है, पृथ्वी की सतह को गर्म करता है। पृथ्वी स्वयं गर्म होने के बाद एक विकिरण पिंड बन जाती है और वायुमंडल में दीर्घ तरंगों के रूप में ऊर्जा का विकिरण करने लगती है। यह ऊर्जा वायुमंडल को नीचे से गर्म करती है। इस प्रक्रिया को '*पार्थिव विकिरण*' कहा जाता है।

दीर्घ तरंगदैर्ध्य विकिरण वायुमंडलीय गैसों, मुख्यत: कार्बन डाईऑक्साइड एवं अन्य ग्रीन हाऊस गैसों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है। इस प्रकार वायुमंडल पार्थिव विकिरण द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से गर्म होता है न कि सीधे सूर्यातप से। तदुपरांत वायुमंडल विकीर्णन द्वारा ताप को अंतरिक्ष में संचरित कर देता है। इस प्रकार पृथ्वी की सतह एवं वायुमंडल का तापमान स्थिर रहता है।

पृथ्वी का ऊष्मा बजट

चित्र 9.2 में पृथ्वी के ऊष्मा बजट को दर्शाया गया है। पृथ्वी ऊष्मा का न तो संचय करती है न ही ह्रास करती है। यह अपने तापमान को स्थिर रखती है। ऐसा तभी सम्भव है, जब सूर्य विकिरण द्वारा सूर्यातप के रूप में प्राप्त ऊष्मा एवं पार्थिव विकिरण द्वारा अंतरिक्ष में संचरित ताप बराबर हों।

मान लें कि वायुमंडल की ऊपरी सतह पर प्राप्त सूर्यातप 100 प्रतिशत है। वायुमंडल से गुज़रते हुए ऊर्जा का कुछ अंश परावर्तित, प्रकीर्णित एवं अवशोषित हो जाता है। केवल शेष भाग ही पृथ्वी की सतह तक पहुँचता है। 100 इकाई में से 35 इकाइयाँ पृथ्वी के धरातल पर पहुँचने से पहले ही अंतरिक्ष में परावर्तित हो जाती है। 27 इकाइयाँ बादलों के ऊपरी छोर से तथा 2 इकाइयाँ पृथ्वी के हिमाच्छादित क्षेत्रों द्वारा परावर्तित होकर

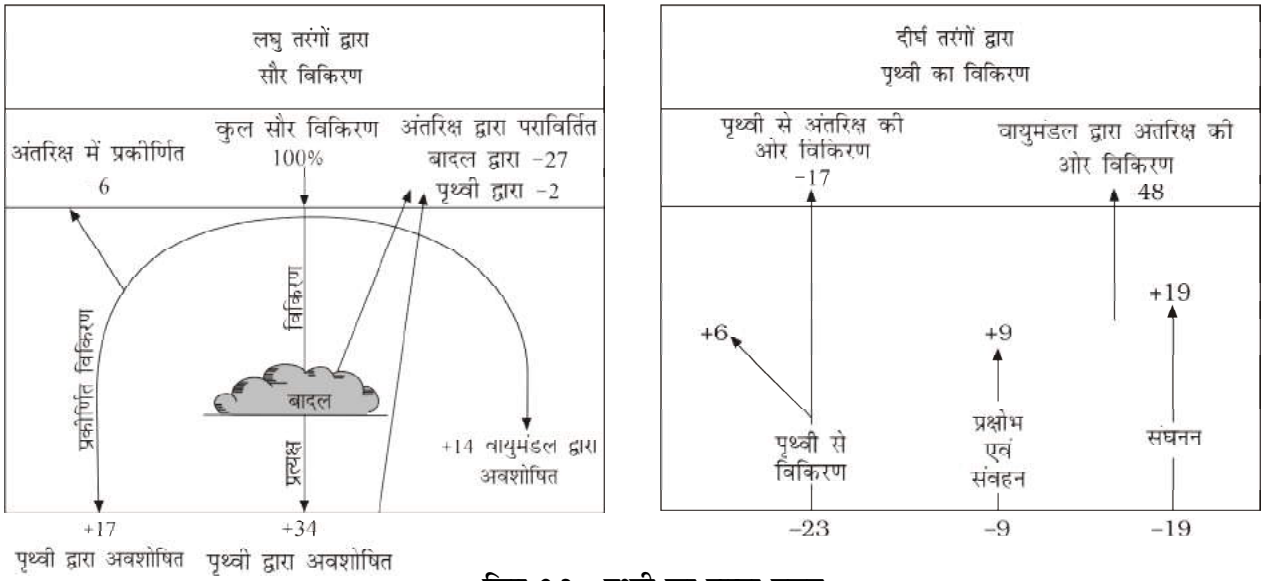

चित्र 9.2 : पृथ्वी का ऊष्मा बजट

लौट जाती हैं। सौर विकिरण की इस परावर्तित मात्रा को पृथ्वी का **एल्बिडो** कहते हैं।

प्रथम 35 इकाइयों को छोड़कर बाकी 65 इकाइयाँ अवशोषित होती है– 14 वायुमंडल में तथा 51 पृथ्वी के धरातल द्वारा। पृथ्वी द्वारा अवशोषित ये 51 इकाइयाँ पुनः पार्थिव विकिरण के रूप में लौटा दी जाती हैं। इनमें से 17 इकाइयाँ तो सीधे अंतरिक्ष में चली जाती हैं और 34 इकाइयाँ वायुमंडल द्वारा अवशोषित होती है- 6 इकाइयाँ स्वयं वायुमंडल द्वारा, 9 इकाइयाँ संवहन के जरिए और 19 इकाइयाँ संघनन की गुप्त ऊष्मा के रूप में। वायुमंडल द्वारा 48 इकाइयों का अवशोषण होता है इनमें 14 इकाइयाँ सूर्यातप की और 34 इकाइयाँ पार्थिव विकिरण की होती हैं। वायुमंडल विकिरण द्वारा इनको भी अंतरिक्ष में वापस लौटा देता है। अतः पृथ्वी के धरातल तथा वायुमंडल से अंतरिक्ष में वापस लौटने वाली विकिरण की इकाइयाँ क्रमशः 17 और 48 हैं, जिनका योग 65

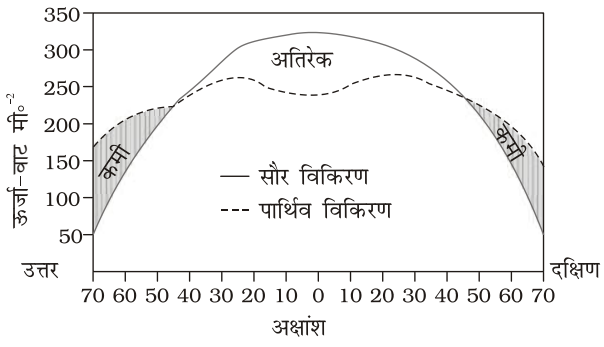

चित्र 9.3 : शुद्ध विकिरण संतुलन में अनुदैर्ध्य परिवर्तन

होता है। वापस लौटने वाली ये इकाइयाँ उन 65 इकाइयों का संतुलन कर देती हैं जो सूर्य से प्राप्त होती हैं। यही पृथ्वी का ऊष्मा बजट अथवा ऊष्मा संतुलन है।

यही कारण है कि ऊष्मा के इतनी बड़े स्थानांतरण के बावजूद भी पृथ्वी न तो बहुत गर्म होती है और न ही ठंडी होती है।

पृथ्वी की सतह पर कुल ऊष्मा बजट में भिन्नता

जैसा कि पहले व्याख्या की जा चुकी है, पृथ्वी की सतह पर प्राप्त विकिरण की मात्रा में भिन्नता पाई जाती है। पृथ्वी के कुछ भागों में विकिरण संतुलन में अधिशेष (Surplus) पाया जाता है, परंतु कुछ भागों में ऋणात्मक संतुलन होता है। चित्र 9.3 में पृथ्वी वायुमंडल-तंत्र के शुद्ध विकिरण में अक्षांशीय भिन्नता को दर्शाया गया है। यह चित्र दर्शाता है कि शुद्ध विकिरण में अधिशेष 40° उत्तरी एवं दक्षिणी अक्षांशों में अधिक है, परंतु ध्रुवों के पास कमी (Deficit) पाई जाती है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों से ताप ऊर्जा ध्रुवों की ओर पुनर्वितरण होता है फलस्वरूप उष्णकटिबंध ताप संचयन के कारण बहुत अधिक गर्म नही हो और न ही उच्च अक्षांश अत्यधिक कमी के कारण पूरी तरह जमे हुए हैं।

तापमान

वायुमंडल एवं भू-पृष्ठ के साथ सूर्यातप की अन्योन्यक्रिया द्वारा जनित ऊष्मा तापमान के रूप में मापा जाता है। जहाँ ऊष्मा किसी पदार्थ कणों के अणुओं की गति को दर्शाती है, वहीं तापमान किसी पदार्थ या स्थान के गर्म या ठंडा होने का डिग्री में माप है।

तापमान के वितरण को नियंत्रित करने वाले कारक

किसी भी स्थान पर वायु का तापमान निम्नलिखित कारकों द्वारा प्रभावित होता है:

(i) उस स्थान की अक्षांश रेखा (ii) समुद्र तल से उस स्थान की उत्तुंगता (iii) समुद्र से उसकी दूरी (iv) वायु संहति का परिसंचरण (v) कोष्ण तथा ठंडी महासागरीय धाराओं की उपस्थिति (vi) स्थानीय कारक।

अक्षांश (Latitude) : किसी भी स्थान का तापमान उस स्थान द्वारा प्राप्त सूर्यातप पर निर्भर करता है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि सूर्यातप की मात्रा में अक्षांश के अनुसार भिन्नता पाई जाती है। अतः तद्नुसार तापमान में भी भिन्नता पाई जाती है।

उत्तुंगता (Altitude) : वायुमंडल पार्थिव विकिरण द्वारा नीचे की परतों में पहले गर्म होता है। यही कारण है कि समुद्र तल के पास के स्थानों पर तापमान अधिक तथा ऊँचे भाग में स्थित स्थानों पर तापमान कम होता है। अन्य शब्दों में तापमान सामान्यतः उत्तुंगता बढ़ने के साथ घटता

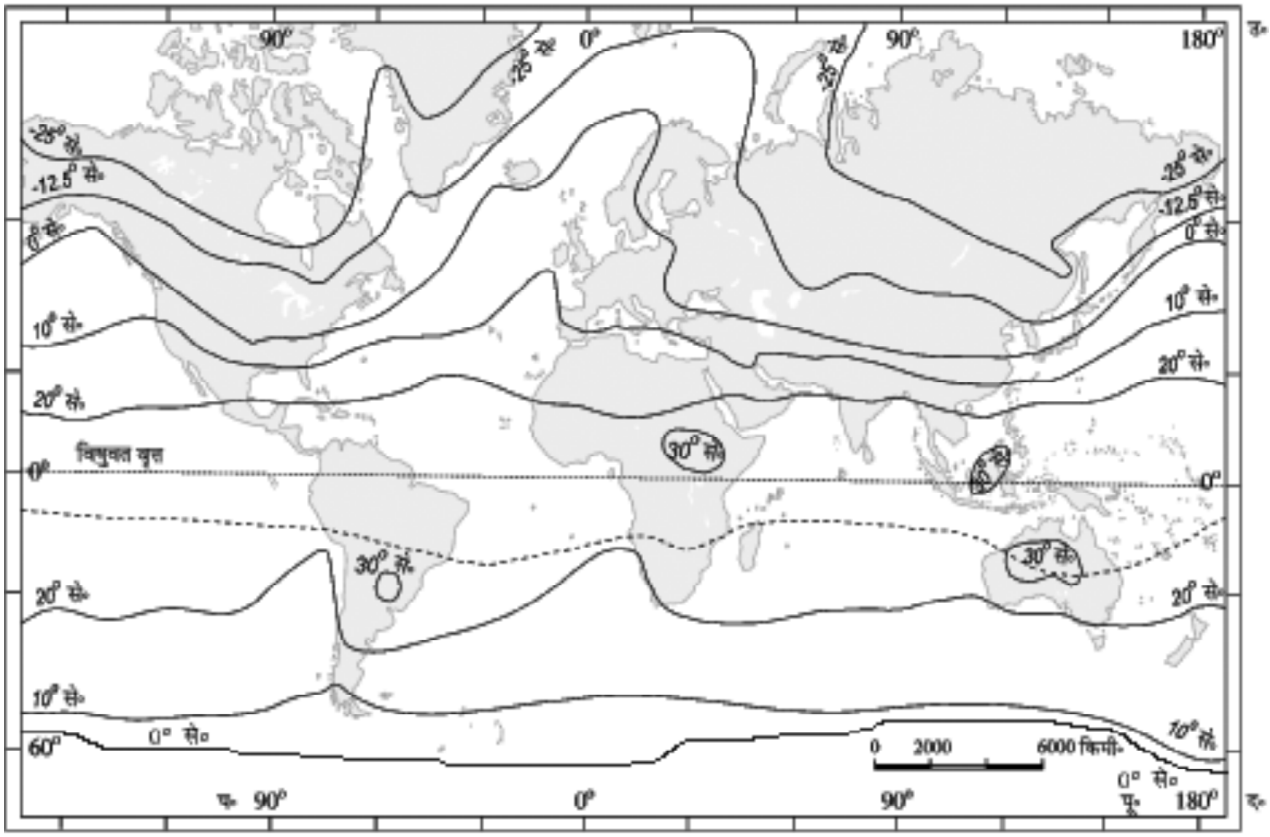

चित्र 9.4 (अ) : भूपृष्ठीय वायु तापक्रम वितरण (जनवरी)

है। उत्तुंगता के बढ़ने के साथ तापमान के घटने की दर को 'सामान्य ह्रास दर' (Normal lapse rate) कहते हैं। सामान्य ह्रास दर प्रति 1,000 मीटर की ऊँचाई बढ़ने पर 6.5° सेल्सियस है।

समुद्र से दूरी : किसी भी स्थान के तापमान को प्रभावित करने वाला दूसरा कारक समुद्र से उस स्थान की दूरी है। स्थल की अपेक्षा समुद्र धीरे-धीरे गर्म और धीरे-धीरे ठंडा होता है। स्थल जल्दी गर्म और जल्दी ठंडा होता है। इसलिए समुद्र के ऊपर स्थल की अपेक्षा तापमान में भिन्नता कम होती है। समुद्र के निकट स्थित क्षेत्रों पर समुद्र एवं स्थली समीर का सामान्य प्रभाव पड़ता है और तापमान सम रहता है।

वायुसंहति तथा महासागरीय धाराएं : स्थलीय एवं समुद्री समीरों की तरह वायु संहतियाँ भी तापमान को प्रभावित करती हैं। कोष्ण वायु संहतियों (Warm airmasses) से प्रभावित होने वाले स्थानों का तापमान अधिक एवं शीत वायुसंहतियों (Cold airmasses) से प्रभावित स्थानों का तापमान कम होता है। इसी प्रकार ठंडी महासागरीय धारा के प्रभाव के अंतर्गत आने वाले समुद्र तटों की अपेक्षा गर्म महासागरीय धारा के प्रभाव में आने वाले तटों का तापमान अधिक होता है।

तापमान का वितरण

जनवरी और जुलाई के तापमान के वितरण का अध्ययन करके हम पूरे विश्व के तापमान वितरण के बारे में जान सकते हैं। मानचित्रों पर तापमान वितरण समान्यत: *समताप रेखाओं* की मदद से दर्शाया जाता है। यह वह रेखा है, जो समान तापमान वाले स्थानों को जोड़ती है। चित्र 9.4 (अ एवं ब) जनवरी तथा जुलाई में होने वाले धरातल पर वायु के तापमान के वितरण को दर्शाता है।

सामान्यत: तापमान पर अक्षांश के प्रभाव को मानचित्र में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। क्योंकि, समताप रेखायें प्राय: अक्षांश के समानांतर होती हैं। इस सामान्य प्रवृत्ति में विचलन, विशेष रूप से उत्तरी गोलार्ध में जुलाई की

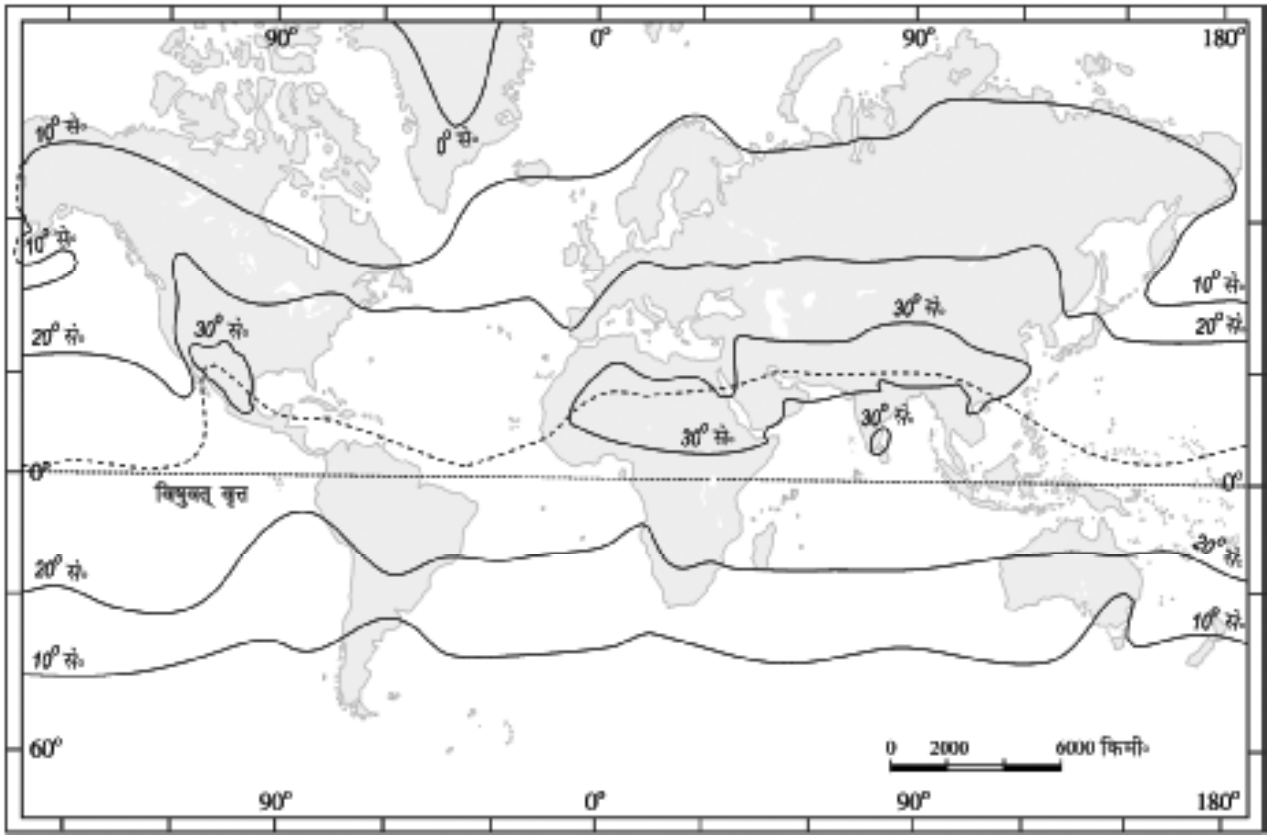

चित्र 9.4 (ब) : भूपृष्ठीय वायु तापक्रम का वितरण (जुलाई)

अपेक्षा जनवरी में अधिक स्पष्ट होता हैं। दक्षिणी गोलार्ध की अपेक्षा उत्तरी गोलार्ध में स्थलीय भाग अधिक है। इसलिए भूसंहति और समुद्री धारा का प्रभाव वहाँ स्पष्ट होता है। जनवरी में समताप रेखायें महासागर के उत्तर और महाद्वीपों पर दक्षिण की ओर विचलित हो जाती हैं। इसे उत्तरी अटलांटिक महासागर पर देखा जा सकता है। कोष्ण महासागरीय धाराएं गल्फ स्ट्रीम तथा उत्तरी अटलांटिक महासागरीय ड्रिफ्ट की उपस्थिति से उत्तरी अटलांटिक महासागर अधिक गर्म होता है तथा समताप रेखायें उत्तर की तरफ मुड़ जाती हैं। सतह के ऊपर तापमान तेजी से कम हो जाता है और समताप रेखायें यूरोप में दक्षिण की ओर मुड़ जाती हैं।

यह साईबेरिया के मैदान पर ज्यादा स्पष्ट होता है। 60° पूर्वी देशांतर के साथ-साथ 80° उत्तरी एवं 50° उत्तरी दोनों ही अक्षांशों पर जनवरी का माध्य तापमान 20° सेल्सियस पाया जाता है। इसी प्रकार जनवरी का माध्य मासिक तापक्रम विषुवत्रेखीय महासागरों पर 27° सेल्सियस से अधिक, उष्ण कटिबंधों में 24° से॰ से अधिक, मध्य अक्षांशों पर 20° से॰ से 0° से॰ तथा यूरेशिया के आंतरिक भाग में -18° से॰ से -48° से॰ तक दर्ज होता है।

दक्षिणी गोलार्ध में तापमान पर महासागरों का स्पष्ट प्रभाव देखा जाता है। यहाँ समताप रेखाएं लगभग अक्षांशों के समानांतर चलती हैं तथा उत्तरी गोलार्ध की अपेक्षा भिन्नता कम तीव्र होती है। 20° से॰, 10° से॰ एवं 0° से॰ की समताप रेखायें क्रमशः 35° द॰ 45° द॰ तथा 60° दक्षिण के समानांतर पाई जाती हैं।

जुलाई में समताप रेखायें प्रायः अक्षांशों के समानांतर चलती हैं। विषुवत्रेखीय महासागरों पर तापमान 27° से॰ से अधिक होता है। एशिया के उपोष्ण कटिबंधीय स्थलीय भागों में 30° उत्तरी अक्षांश के साथ-साथ तापमान 30° से॰ से अधिक पाया जाता है। 40° उत्तरी एवं 40° दक्षिणी अक्षांशों पर तापमान 10° से॰ दर्ज किया गया है।

चित्र 9.5 जनवरी एवं जुलाई के बीच तापांतर को प्रदर्शित करता है। सर्वाधिक तापांतर यूरेशिया महाद्वीप के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र में पाया जाता है, जो लगभग 60° से॰ है।

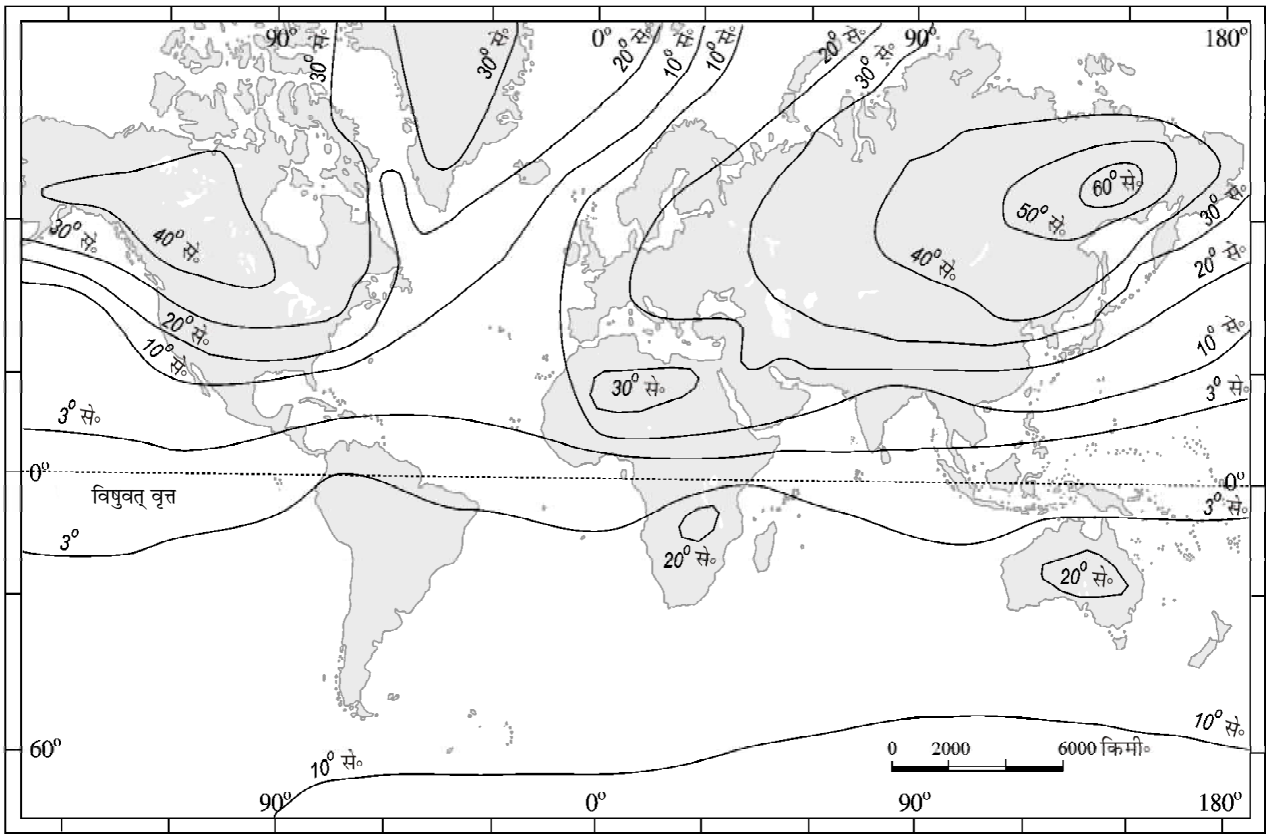

चित्र 9.5 : जनवरी और जुलाई के मध्य तापांतर

इसका मुख्य कारण 'महाद्वीपीयता' (Continentality) है। सबसे कम 3° से० का तापांतर 20° दक्षिणी एवं 15° उत्तरी अक्षांशों के बीच पाया जाता है।

तापमान का व्युत्क्रमण

सामान्यत: तापमान ऊँचाई के साथ घटता जाता है, जिसे सामान्य ह्रास दर कहते हैं। पर कई बार स्थिति बदल जाती है और सामान्य ह्रास दर उलट जाती है। इसे *तापमान का व्युत्क्रमण* कहते हैं। अक्सर व्युत्क्रमण बहुत थोड़े समय के लिए होता है, पर यह काफी सामान्य घटना है। सर्दियों की मेघ विहीन लंबी रात तथा शांत वायु, व्युत्क्रमण के लिए आदर्श दशाएँ हैं। दिन में प्राप्त ऊष्मा रात के समय विकिरित कर दी जाती है और सुबह तक भूपृष्ठ अपने ऊपर की हवा से अधिक ठंडी हो जाती है। ध्रुवीय क्षेत्रों में वर्ष भर तापमान व्युत्क्रमण होना सामान्य है।

भूपृष्ठीय व्युत्क्रमण वायुमंडल के निचले स्तर में स्थिरता को बढ़ावा देता है। धुआँ तथा धूलकण व्युत्क्रमण स्तर से नीचे एकत्र होकर चारों ओर फैल जाते हैं, जिनसे वायुमंडल का निम्न स्तर भर जाता है। इससे सर्दियों में सुबह के समय घने कुहरे की रचना सामान्य घटना है। यह व्युत्क्रमण कुछ ही घंटों तक रहता है। सूर्य के ऊपर चढ़ने और पृथ्वी के गर्म होने के साथ यह समाप्त हो जाता है।

पहाड़ी और पर्वतीय क्षेत्रों में वायु अपवाह के कारण व्युत्क्रमण की उत्पत्ति होती है। पहाड़ियों तथा पर्वतों पर रात में ठंडी हुई हवा गुरुत्वाकर्षण बल के प्रभाव में भारी और घनी होने के कारण लगभग जल की तरह कार्य करती है और ढाल के साथ ऊपर से नीचे उतरती है। यह घाटी की तली में गर्म हवा के नीचे एकत्र हो जाती है। इसे *वायु अपवाह* कहते हैं। यह पाले से पौधों की रक्षा करती है।

- प्लैंक का नियम बताता है कि एक वस्तु जितनी गर्म होगी वह उतनी ही अधिक ऊर्जा का विकिरण करेगी और उसकी तरंग दैर्ध्य उतनी लघु होगी।
- एक ग्राम पदार्थ का तापमान एक अंश सेल्सियस बढ़ाने के लिए जितनी ऊर्जा की आवश्यकता है, वह विशिष्ट ऊष्मा कहलाती है।

अभ्यास

1. बहुवैकल्पिक प्रश्न :

(i) निम्न में से किस अक्षांश पर 21 जून की दोपहर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती हैं?
(क) विषवुत् वृत्त पर (ख) 23.5° उ॰ (ग) 66.5° द॰ (घ) 66.5° उ॰

(ii) निम्न में से किन शहरों में दिन ज्यादा लंबा होता है?
(क) तिरुवनंतपुरम (ख) हैदराबाद (ग) चंडीगढ़ (घ) नागपुर

(iii) निम्नलिखित में से किस प्रक्रिया द्वारा वायुमंडल मुख्यत: गर्म होता है।
(क) लघु तरंगदैर्ध्य वाले सौर विकिरण से
(ख) लंबी तरंगदैर्ध्य वाले स्थलीय विकिरण से
(ग) परावर्तित सौर विकिरण से
(घ) प्रकीर्णित सौर विकिरण से

(iv) निम्न पदों को उसके उचित विवरण के साथ मिलाएँ।

1. सूर्यातप	(अ) सबसे कोष्ण और सबसे शीत महीनों के माध्य तापमान का अंतर
2. एल्बिडो	(ब) समान तापमान वाले स्थानों को जोड़ने वाली रेखा
3. समताप रेखा	(स) आनेवाला सौर विकिरण
4. वार्षिक तापांतर	(द) किसी वस्तु के द्वारा परावर्तित दृश्य प्रकाश का प्रतिशत

(v) पृथ्वी के विषुवत् वृत्तीय क्षेत्रों की अपेक्षा उत्तरी गोलार्ध के उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों का तापमान अधिकतम होता है, इसका मुख्य कारण है
(क) विषुवतीय क्षेत्रों की अपेक्षा उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में कम बादल होते हैं।
(ख) उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में गर्मी के दिनों की लंबाई विषुवतीय क्षेत्रों से ज्यादा होती है।
(ग) उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में 'ग्रीन हाऊस प्रभाव' विषुवतीय क्षेत्रों की अपेक्षा ज्यादा होता है।
(घ) उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र विषुवतीय क्षेत्रों की अपेक्षा महासागरीय क्षेत्र के ज्यादा करीब है।

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए :

(i) पृथ्वी पर तापमान का असमान वितरण किस प्रकार जलवायु और मौसम को प्रभावित करता है?
(ii) वे कौन से कारक है, जो पृथ्वी पर तापमान के वितरण को प्रभावित करते हैं?
(iii) भारत में मई में तापमान सर्वाधिक होता है, लेकिन उत्तर अयनांत के बाद तापमान अधिकतम नहीं होता। क्यों?
(iv) साइबेरिया के मैदान में वार्षिक तापांतर सर्वाधिक होता है। क्यों?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दीजिए :

(i) अक्षांश और पृथ्वी के अक्ष का झुकाव किस प्रकार पृथ्वी की सतह पर प्राप्त होने वाली विकिरण की मात्रा को प्रभावित करते हैं?
(ii) उन प्रक्रियाओं की व्याख्या करें जिनके द्वारा पृथ्वी तथा इसका वायुमंडल ऊष्मा संतुलन बनाए रखते हैं।
(iii) जनवरी में पृथ्वी के उत्तरी और दक्षिणी गोलार्ध के बीच तापमान के विश्वव्यापी वितरण की तुलना करें।

परियोजना कार्य

अपने शहर या शहर के आस-पास के किसी वेधशाला का पता लगायें। वेधशाला की मौसम विज्ञान संबंधी सारणी में दिये गये तापमान को सारणीबद्ध करें। (i) वेधशाला कि तुंगता अक्षांश और उस समय को जिसके लिए माध्य निकाला गया है, लिखें। (ii) सारणी में तापमान के संबंध में दिये गये पदों को परिभाषित करें। (iii) एक महीने तक प्रतिदिन के तापमान के माध्य की गणना करें। (iv) ग्राफ द्वारा प्रतिदिन का अधिकतम माध्य तापमान, न्यूनतम माध्य तापमान तथा कुल माध्य तापमान दर्शायें। (v) वार्षिक तापांतर की गणना करें। (vi) पता लगायें कि किन महीनों के प्रतिदिन का माध्य तापमान सबसे अधिक और सबसे कम है। (vii) उन कारकों को लिखें, जो किसी स्थान के तापमान का निर्धारण करते हैं और जनवरी, मई, जुलाई और अक्तूबर में होने वाले तापमान में अंतर के कारणों को समझायें।

महीना	*प्रतिदिन के अधिकतम तापमान का माध्य (°से॰)*	*प्रतिदिन के न्यूनतम तापमान का माध्य (°से॰)*	*उच्चतम तापमान (°से॰)*	*न्यूनतम तापमान (°से॰)*
जनवरी	21.1	7.3	29.3	0.6
मई	39.6	25.9	47.2	17.5

उदाहरण

वेधशाला : सफदरजंग, नयी दिल्ली

अक्षांश : 28° 35° उत्तरी

अवलोकन वर्ष : 1951 से 1980

समुद्री सतह के माध्यम से तुंगता : 216 मी॰

एक महीने के प्रतिदिन का माध्य तापमान

जनवरी $\dfrac{21.1+7.3}{2} = 14.2^0C$

मई $\dfrac{39.6+25.9}{2} = 32.75^0C$

वार्षिक तापांतर

मई का अधिकतम माध्य ताप – जनवरी का माध्य तापमान

वार्षिक तापांतर = 32.75° से. –14.2° से. = 18.55° से.

अध्याय

10

वायुमंडलीय परिसंचरण तथा मौसम प्रणालियाँ

अध्याय 9 में पृथ्वी के धरातल पर तापमान का असामान्य वितरण वर्णित है। वायु गर्म होने पर फैलती है और ठंडी होने पर सिकुड़ती है। इससे वायुमंडलीय दाब में भिन्नता आती है। इसके परिणामस्वरूप वायु गतिमान होकर अधिक दाब वाले क्षेत्रों से न्यून दाब वाले क्षेत्रों में प्रवाहित होती है। आप जानते हैं कि क्षैतिज गतिमान वायु ही पवन है। वायुमंडलीय दाब यह भी निर्धारित करता है कि कब वायु ऊपर उठेगी व कब नीचे बैठेगी। पवनें पृथ्वी पर तापमान व आर्द्रता का पुनर्वितरण करती हैं, जिससे पूरी पृथ्वी का तापमान स्थिर बना रहता है। ऊपर उठती हुई आर्द्र वायु का तापमान कम होता जाता है, बादल बनते हैं और वर्षा होती है। इस अध्याय में वायुमंडलीय दाब भिन्नता के कारणों, वायुमंडलीय परिसंचरण सम्बन्धी बल, वायु विक्षोभ, वायुराशियों का बनना, वायुराशियों के मिश्रण से मौसम संबंधी विक्षोभ व उष्णकटिबंधीय चक्रवातों के विवरण सम्मिलित है।

वायुमंडलीय दाब

क्या आप जानते हैं कि हमारा शरीर भी वायुदाब से प्रभावित होता है? जैसे-जैसे आप ऊपर ऊँचाई पर चढ़ते जाते हैं, वायु विरल होती जाती है और साँस लेने में कठिनाई होती है।

माध्य समुद्रतल से वायुमंडल की अंतिम सीमा तक एक इकाई क्षेत्रफल के वायु स्तंभ के भार को वायुमंडलीय दाब कहते हैं। वायुदाब को मापने की इकाई मिलीबार है। समुद्र तल पर औसत वायुमंडलीय दाब 1,013.2 मिलीबार होता है। गुरुत्वाकर्षण के कारण धरातल के निकट वायु सघन होती है और इसी के कारण वायुदाब अधिक होता है। वायुदाब को मापने के लिए पारद वायुदाबमापी (Mercury barometer) अथवा निर्द्रव बैरोमीटर (Aneroid barometer) का प्रयोग किया जाता है। इन उपकरणों के विषय में जानने हेतु भूगोल में प्रयोगात्मक कार्य भाग-1, एन.सी.ई.आर.टी., 2006 देखें। वायुदाब ऊँचाई के साथ घटता है। ऊँचाई पर वायुदाब भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न होता है और यह विभिन्नता ही वायु में गति का मुख्य कारण है, अर्थात् पवनें उच्च वायुदाब क्षेत्रों से कम वायुदाब क्षेत्रों की तरफ चलती हैं।

वायुदाब में ऊर्ध्वाधर भिन्नता

वायुमंडल के निचले भाग में वायुदाब ऊँचाई के साथ तीव्रता से घटता है। यह ह्रास दर प्रत्येक 10 मीटर की ऊँचाई पर 1 मिलीबार होता है। वायुदाब सदैव एक ही दर से नहीं घटता। सारणी 10.1 निश्चित ऊँचाई पर वायुमंडल में औसत वायुदाब और तापमान को प्रस्तुत करती है।

सारणी 10.1 : निश्चित ऊँचाई पर मानक तापमान व वायुदाब

स्तर	*वायुदाब (मिलीबार में)*	*तापमान (°से॰ में)*
समुद्रतल	1,013.25	15.2
1 कि॰मी॰	898.76	8.7
5 कि॰मी॰	540.48	-17.3
10 कि॰मी॰	265.00	-49.7

ऊर्ध्वाधर दाब प्रवणता क्षैतिज दाब प्रवणता की

अपेक्षा अधिक होती है। लेकिन, इसके विपरीत दिशा में कार्यरत गुरुत्वाकर्षण बल से यह संतुलित हो जाती है अत: ऊर्ध्वाधर पवनें अधिक शक्तिशाली नहीं होती।

वायुदाब का क्षैतिज वितरण

पवनों की दिशा व वेग के संदर्भ में वायुदाब में अल्प अंतर भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। वायुदाब के क्षैतिज वितरण का अध्ययन समान अंतराल पर खींची गयी समदाब रेखाओं द्वारा किया जाता है। समदाब रेखाएँ वे रेखाएँ हैं जो समुद्र तल से एक समान वायुदाब वाले स्थानों को मिलाती हैं। दाब पर ऊँचाई के प्रभाव को दूर करने और तुलनात्मक बनाने के लिए, वायुदाब मापने के बाद इसे समुद्र तल के स्तर पर घटा लिया जाता है। समुद्रतल पर वायुदाब वितरण मौसम मानचित्रों में दिखाया जाता है।

चित्र 10.1 विभिन्न वायुदाब परिस्थितियों में समदाब रेखाओं की आकृति दर्शाता है। निम्नदाब प्रणाली एक या अधिक समदाब रेखाओं से घिरी होती है जिसके केंद्र में

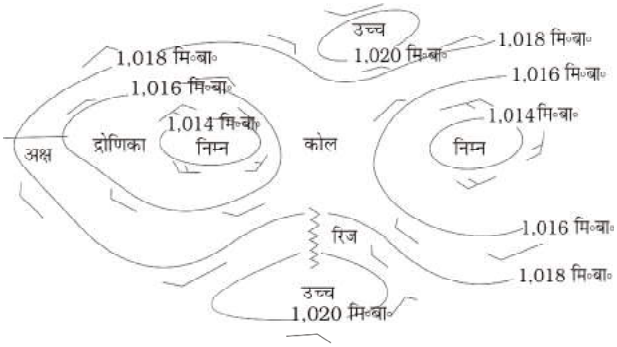

चित्र 10.1 : उत्तरी गोलार्ध में समदाब रेखाएं, वायुदाब तथा पवन तंत्र

निम्न वायुदाब होता है। उच्च दाब प्रणाली में भी एक या अधिक समदाब रेखाएँ होती हैं जिनके केंद्र में उच्चतम वायुदाब होता है।

समुद्रतल वायुदाब का विश्व-वितरण

जनवरी व जुलाई महीने का समुद्रतल से वायुदाब का विश्व-वितरण चित्र 10.2 व 10.3 में दर्शाया गया है।

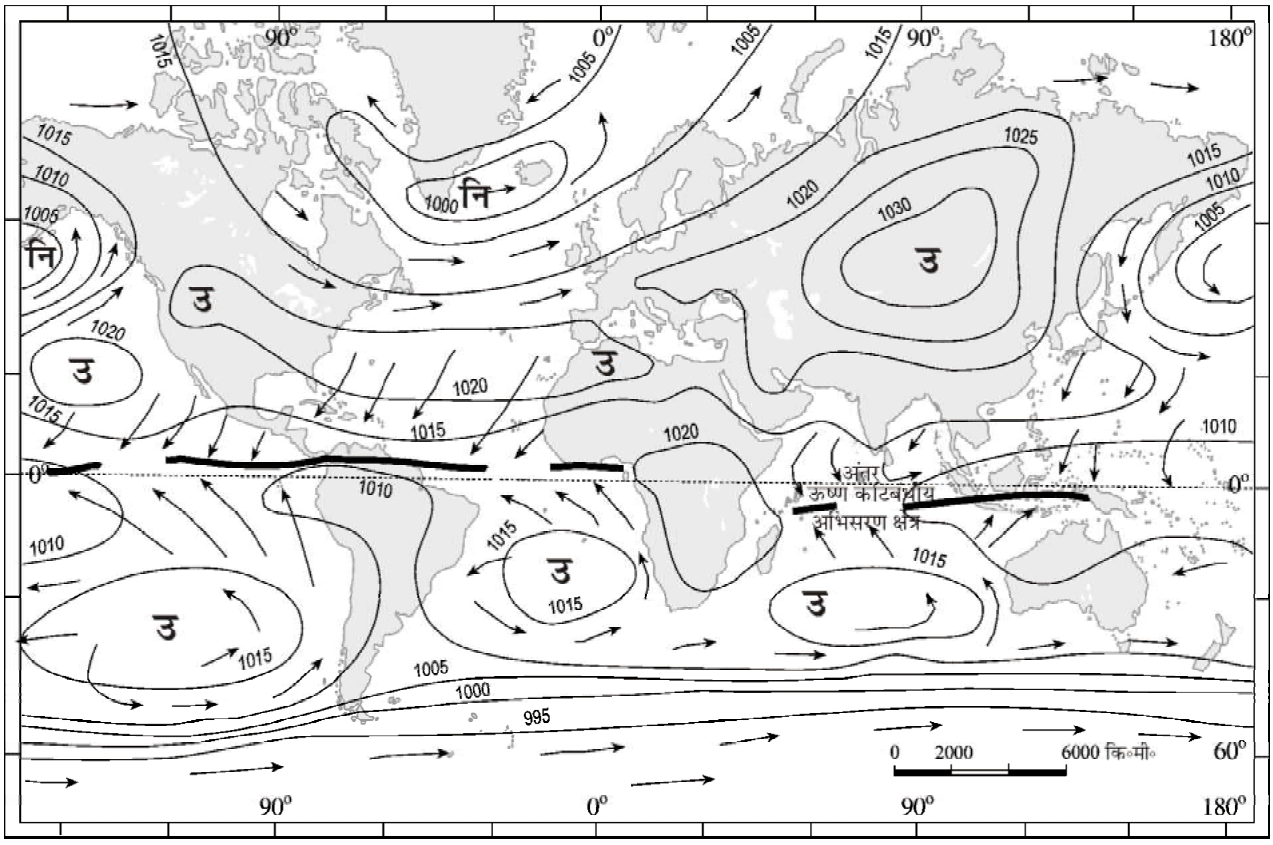

चित्र 10.2 : माध्य समुद्रतल वायु दाब (समदाब रेखाएं मिलीबार में) - जनवरी

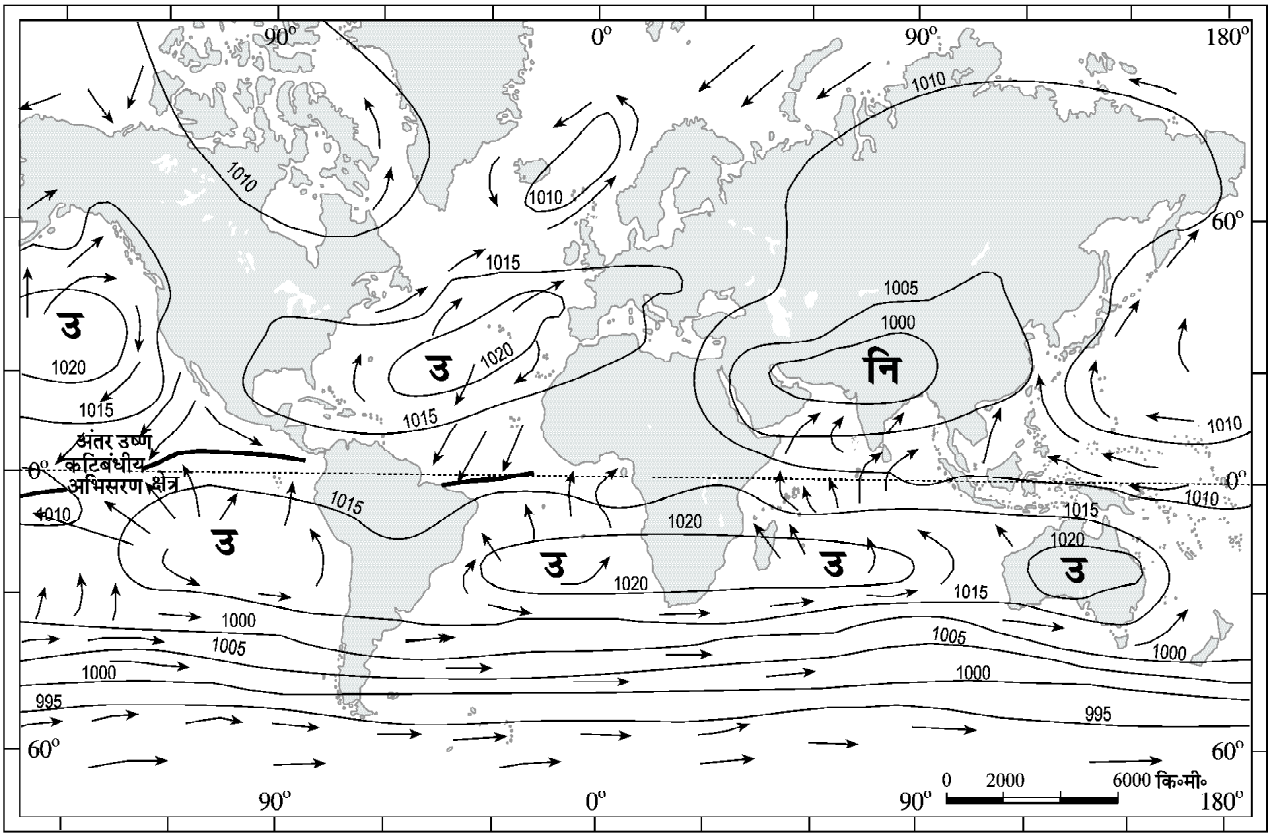

चित्र 10.3 : माध्य समुद्रतल वायु दाब (समदाब रेखाएं मिलीबार में) - जुलाई

विषुवत् वृत्त के निकट वायुदाब कम होता है और इसे विषुवतीय निम्न अवदाब क्षेत्र (Equatorial low) के नाम से जाना जाता है। 30° उत्तरी व 30° दक्षिणी अक्षांशों के साथ उच्च दाब क्षेत्र पाए जाते हैं, जिन्हें उपोष्ण उच्च वायुदाब क्षेत्र कहा जाता है। पुन: ध्रुवों की तरफ 60° उत्तरी व 60° दक्षिणी अक्षांशों पर निम्न दाब पेटियाँ हैं जिन्हें अधोध्रुवीय निम्नदाब पट्टियाँ कहते हैं। ध्रुवों के निकट वायुदाब अधिक होता है और इसे ध्रुवीय उच्च वायुदाब पट्टी कहते हैं। ये वायुदाब पट्टियाँ स्थाई नही हैं। सूर्य किरणों के विस्थापन के साथ ये पट्टियाँ विस्थापित होती रहती हैं। उत्तरी गोलार्ध में शीत ऋतु में ये पट्टियाँ दक्षिण की ओर तथा ग्रीष्म ऋतु ये उत्तर दिशा की ओर खिसक जाती हैं।

पवनों की दिशा व वेग को प्रभावित करने वाले बल

आप यह जानते ही हैं कि (वायुमंडलीय दाब में) भिन्नता के कारण वायु गतिमान होती हैं। इस क्षैतिज गतिज वायु को पवन कहते हैं। पवनें उच्च दाब से कम दाब की तरफ प्रवाहित होती हैं। भूतल पर धरातलीय विषमताओं के कारण घर्षण पैदा होता है, जो पवनों की गति को प्रभावित करता है। इसके साथ पृथ्वी का घूर्णन भी पवनों के वेग को प्रभावित करता है। पृथ्वी के घूर्णन द्वारा लगने वाले बल को *कोरिऑलिस बल* कहा जाता है। अत: पृथ्वी के धरातल पर क्षैतिज पवनें तीन संयुक्त प्रभावों का परिणाम है :

दाब प्रवणता प्रभाव, घर्षण बल, तथा कोरिआलिस बल।

इसके अतिरिक्त , गुरुत्वाकर्षण बल पवनों को नीचे प्रवाहित करता है।

दाब-प्रवणता बल

वायुमंडलीय दाब भिन्नता एक बल उत्पन्न करता है। दूरी के संदर्भ में दाब परिवर्तन की दर दाब प्रवणता है। जहाँ समदाब रेखाएँ पास-पास हों, वहाँ दाब प्रवणता अधिक व समदाब रेखाओं के दूर-दूर होने से दाब प्रवणता कम होती है।

घर्षण बल

यह पवनों की गति को प्रभावित करता है। धरातल पर घर्षण सर्वाधिक होता है और इसका प्रभाव प्राय: धरातल से 1 से 3 कि॰मी॰ ऊँचाई तक होता है। समुद्र सतह पर घर्षण न्यूनतम होता है।

कोरिऑलिस बल

पृथ्वी का अपने अक्ष पर घूर्णन पवनों की दिशा को प्रभावित करता है। सन् 1844 में फ्रांसिसी वैज्ञानिक ने इसका विवरण प्रस्तुत किया और इसी पर इस बल को कोरिआलिस बल कहा जाता है। इस प्रभाव से पवनें उत्तरी गोलार्ध में अपनी मूल दिशा से दाहिने तरफ व दक्षिण गोलार्ध में बाईं तरफ विक्षेपित (deflect) हो जाती हैं। जब पवनों का वेग अधिक होता है, तब विक्षेपण भी अधिक होता है। कोरिऑलिस बल अक्षांशों के कोण के सीधा समानुपात में बढ़ता है। यह ध्रुवों पर सर्वाधिक और विषुवत् वृत्त पर अनुपस्थित होता है।

कोरिऑलिस बल दाब प्रवणता के समकोण पर कार्य करता है। दाब प्रवणता बल समदाब रेखाओं के समकोण पर होता है। जितनी दाब प्रवणता अधिक होगी, पवनों का वेग उतना ही अधिक होगा और पवनों की दिशा उतनी ही अधिक विक्षेपित होगी। इन दो बलों के एक दूसरे से समकोण पर होने के कारण निम्न दाब क्षेत्रों में पवनें इसी के इर्द-गिर्द बहती हैं। विषुवत् वृत्त पर कोरिऑलिस बल शून्य होता है और पवनें समदाब रेखाओं के समकोण पर बहती हैं। अत: निम्न दाब क्षेत्र और अधिक गहन होने की बजाय पूरित हो जाता है। यही कारण है कि विषुवत् वृत्त के निकट उष्णकटिबंधीय चक्रवात नहीं बनते।

वायुदाब व पवनें

पवनों का वेग व उनकी दिशा, पवनों को उत्पन्न करने वाले बलों का परिणाम है। पृथ्वी की सतह से 2-3 कि.मी. की ऊँचाई पर ऊपरी वायुमंडल में पवनें धरातलीय घर्षण के प्रभाव से मुक्त होती हैं और मुख्यत: दाब प्रवणता तथा कोरिऑलिस बल से नियंत्रित होती हैं। जब समदाब रेखाएँ सीधी हों और घर्षण का प्रभाव न हो, तो दाब प्रवणता बल कोरिऑलिस बल से संतुलित हो जाता है और फलस्वरूप पवनें समदाब रेखाओं के समानांतर बहती हैं। ये पवनें भूविक्षेपी (Geostrophic) पवनों के नाम से जानी जाती हैं। (चित्र 10.4)

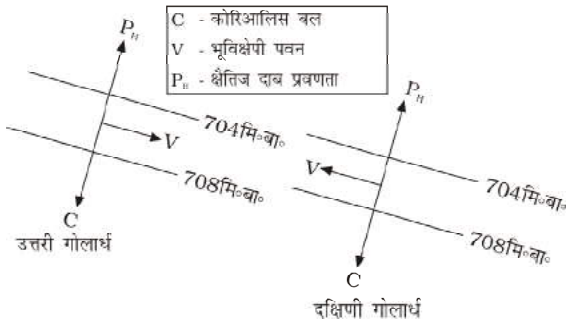

चित्र 10.4 : भूविक्षेपी पवन

निम्न दाब क्षेत्र के चारों तरफ पवनों का परिक्रमण *चक्रवाती परिसंचरण* कहलाता है। उच्च वायु दाब क्षेत्र के चारों तरफ ऐसा होना प्रतिचक्रवाती परिसंचरण कहा जाता है। इन प्रणालियों में पवनों की दिशा दोनों गोलार्धों में भिन्न होती है। (सारणी 10.2)

पृथ्वी की सतह पर कई बार निम्न व उच्च दाब के चारों ओर पवनों का परिसंचरण ऊँचाई पर होने वाले वायु परिसंचरण से संबंधित ही होता है। प्राय: निम्न दाब क्षेत्रों पर वायु अभिसरित होंगी और ऊपर उठेंगी। उच्च दाब क्षेत्रों में वायु का अवतलन होगा और धरातल पर अपसरित होगी (चित्र 10.5)। अभिसरण के अतिरिक्त, वायु, भ्रमिल रूप में, संवहन धाराओं में, पर्वतों के

सारणी 10.2 : चक्रवात तथा प्रतिचक्रवात में पवनों की दिशा का प्रारूप

दाब पद्धति	*केन्द्र में दाब की दशा*	*पवन दिशा का प्रारूप*	
		उत्तरी गोलार्ध	*दक्षिणी गोलार्ध*
चक्रवात	निम्न	घड़ी की सुई की दिशा के विपरीत	घड़ी की सुई की दिशा के अनुरूप
प्रतिचक्रवात	उच्च	घड़ी की सुई की दिशा के अनुरूप	घड़ी की सुई की दिशा के विपरीत

साथ-साथ और वाताग्र के सहारे ऊपर उठती है, जो बादल बनने व वर्षण के लिए आवश्यक है।

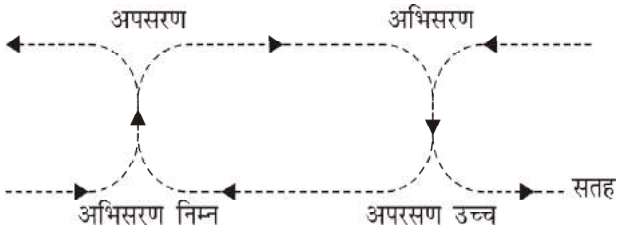

चित्र 10.5 : पवनों का अभिसरण तथा अपसरण

वायुमंडल का सामान्य परिसंचरण

भूमंडलीय पवनों का प्रारूप मुख्यत: निम्न बातों पर निर्भर है : (i) वायुमंडलीय ताप में अक्षांशीय भिन्नता, (ii) वायुदाब पट्टियों की उपस्थिति, (iii) वायुदाब पट्टियों का सौर किरणों के साथ विस्थापन, (iv) महासागरों व महाद्वीपों का वितरण तथा (v) पृथ्वी का घूर्णन। वायुमंडलीय पवनों के प्रवाह प्रारूप को वायुमंडलीय सामान्य परिसंचरण भी कहा जाता है। यह वायुमंडलीय परिसंचरण महासागरीय जल को भी गतिमान करता है, जो पृथ्वी की जलवायु को प्रभावित करता है। सामान्य परिसंचरण का एक क्रमिक विवरण चित्र 10.6 में प्रस्तुत है।

उच्च सूर्यातप व निम्न वायुदाब होने से अंतर-उष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (ITCZ) पर वायु संवहन धाराओं के रूप में ऊपर उठती है। उष्णकटिबंधों से आने वाली पवनें इस निम्न दाब क्षेत्र में अभिसरण करती हैं। अभिसरित वायु संवहन कोष्ठों के साथ ऊपर उठती हैं। यह क्षोभमंडल के ऊपर 14 कि.मी. की ऊँचाई तक ऊपर चढ़ती है और फिर ध्रुवों की तरफ प्रवाहित होती हैं। इसके परिणामस्वरूप लगभग 30° उत्तर व 30° दक्षिण अक्षांश पर वायु एकत्रित हो जाती है। इस एकत्रित वायु का अवतलन होता है और यह उपोष्ण उच्चदाब बनाता है। अवतलन का एक कारण यह है कि जब वायु 30° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश पर पहुंचती है तो यह ठंडी हो जाती है। धरातल के निकट वायु का अपसरण होता है और यह विषुवत् वृत्त की ओर पूर्वी पवनों के रूप में बहती हैं। विषुवत् वृत्त के दोनों तरफ से प्रवाहित होने वाली पूर्वी पवनें अंतर उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र (ITCZ) पर मिलती हैं। पृथ्वी की सतह से ऊपर की दिशा में होने वाले परिसंचरण और इसके विपरीत दिशा में होने वाले परिसंचरण को कोष्ठ (Cell) कहते हैं। उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में ऐसे कोष्ठ को *हेडले कोष्ठ* (Hadley cell) कहा जाता है। मध्य अक्षांशीय वायु परिसंचरण में ध्रुवों से प्रवाहित होती ठंडी पवनों का अवतलन होता है और उपोष्ण उच्चदाब कटिबंधीय क्षेत्रों

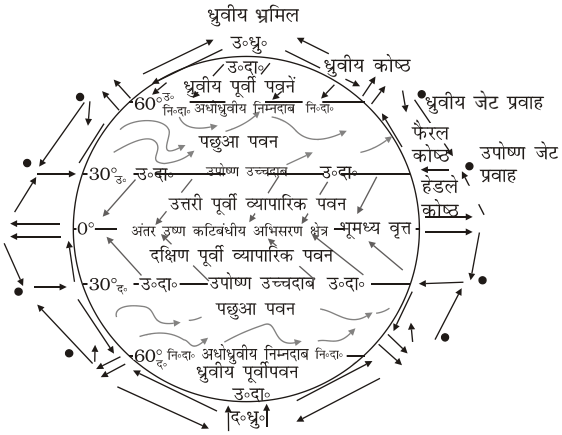

चित्र 10.6 : वायुमंडल का सरलतम सामान्य परिसंचरण

से आती गर्म हवा ऊपर उठती है। धरातल पर ये पवनें पछुआ पवनों के नाम से जानी जाती हैं और यह कोष्ठ *फैरल कोष्ठ* के नाम से जाने जाते हैं। ध्रुवीय अक्षाँशों पर ठंडी सघन वायु का ध्रुवों पर अवतलन होता है और मध्य अक्षांशों की ओर ध्रुवीय पवनों के रूप में प्रवाहित होती हैं। इस कोष्ठ को *ध्रुवीय कोष्ठ* कहा जाता है। ये तीन कोष्ठ वायुमंडल के सामान्य परिसंचरण का प्रारूप निर्धारित करते हैं। तापीय ऊर्जा का निम्न अक्षांशों से उच्च अक्षांशों में स्थानांतर सामान्य परिसंचरण को बनाये रखता है।

वायुमंडल का सामान्य परिसंचरण महासागरों को भी प्रभावित करता है। वायुमंडल में वृहत् पैमाने पर चलने वाली पवनें धीमी तथा अधिक गति की महासागरीय धाराओं को प्रवाहित करती हैं। महासागर वायु को ऊर्जा व जलवाष्प प्रदान करते हैं। ये अंतर्संबंध महासागरों के विस्तृत क्षेत्रों पर अपेक्षाकृत धीमे होते हैं।

मौसमी पवनें

पवनों के प्रवाह के प्रारूप में विभिन्न मौसमों में बदलाव आता है। यह बदलाव अत्यधिक तापन, पवन व वायुदाब पट्टियों के विस्थापन आदि के कारण होता है। ऐसे विस्थापन का सबसे अधिक स्पष्ट प्रभाव विशेषकर दक्षिण पूर्व एशिया में मानसून पवनों के बदलाव में देखा

वायुमंडल का सामान्य परिसंचरण और उसका महासागरों पर प्रभाव

वायुमंडल के सामान्य परिसंचरण के संदर्भ में प्रशांत महासागर का गर्म या ठंडा होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। मध्य प्रशांत महासागर की गर्म जलधाराएं दक्षिणी अमेरिका के तट की ओर प्रवाहित होती हैं और पीरू की ठंडी धाराओं का स्थान ले लेती हैं। पीरू के तट पर इन गर्म धाराओं की उपस्थिति एल-निनो कहलाता है। एल-निनो घटना का मध्यप्रशांत महासागर और आस्ट्रेलिया के वायुदाब परिवर्तन से गहरा संबंध है। प्रशांत महासागर पर वायुदाब में यह परिवर्तन दक्षिणी दोलन कहलाता है। इन दोनों (दक्षिणी दोलन/बदलाव व एल निनो) की संयुक्त घटना को ईएनएसओ (ENSO) के नाम से जाना जाता है। जिन वर्षों में ईएनएसओ (ENSO) शक्तिशाली होता है, विश्व में वृहत् मौसम संबंधी भिन्नताएँ देखी जाती हैं। दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी शुष्क तट पर भारी वर्षा होती है, आस्ट्रेलिया और कभी-कभी भारत अकालग्रस्त होते हैं तथा चीन में बाढ़ आती है। इन घटनाओं के ध्यानपूर्वक आकलन से संसार के अन्य भागों की मौसम संबंधी भविष्यवाणी के रूप में इनका प्रयोग किया जाता है।

जा सकता है। आप मानसून के विषय में विस्तारपूर्वक *भारत: भौतिक पर्यावरण, कक्षा-11, एन.सी.ई.आर.टी., 2006* में पढ़ेंगे। सामान्य परिसंचरण प्रणाली से भिन्न अन्य स्थानीय विसंगतियाँ नीचे वर्णित हैं।

स्थानीय पवनें

भूतल के गर्म व ठंडे होने से भिन्नता तथा दैनिक व वार्षिक चक्रों के विकास से बहुत सी स्थानीय व क्षेत्रीय पवनें प्रवाहित होती हैं।

स्थल व समुद्र समीर

जैसाकि पहले वर्णित है, ऊष्मा के अवशोषण तथा स्थानांतरण में स्थल व समुद्र में भिन्नता पायी जाती है। दिन के दौरान स्थल भाग समुद्र की अपेक्षा अधिक गर्म हो जाते हैं। अत: स्थल पर हवाएँ ऊपर उठती हैं और निम्न दाब क्षेत्र बनता है, जबकि समुद्र अपेक्षाकृत ठंडे रहते हैं और उन पर उच्च वायुदाब बना रहता है। इससे समुद्र से स्थल की ओर दाब प्रवणता उत्पन्न होती है और पवनें समुद्र से स्थल की तरफ समुद्र समीर के रूप में प्रवाहित होती हैं। रात्रि में इसके एकदम विपरीत प्रक्रिया होती है। स्थल समुद्र की अपेक्षा जल्दी ठंडा होता है। दाब प्रवणता स्थल से समुद्र की तरफ होने पर स्थल समीर प्रवाहित होती है (चित्र 10.7)।

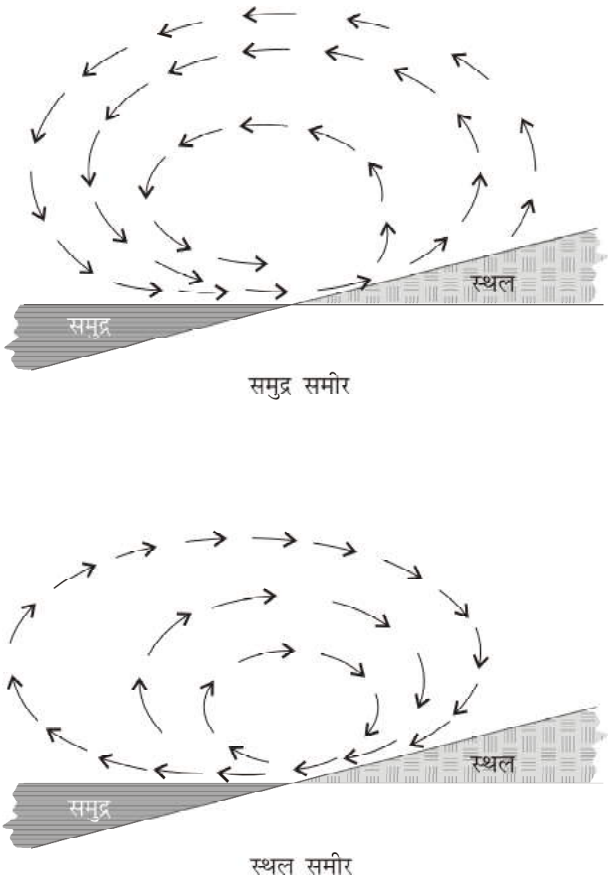

चित्र 10.7 : स्थल समीर तथा समुद्र समीर

पर्वत व घाटी पवनें

दिन के दौरान पर्वतीय प्रदेशों में ढाल गर्म हो जाते हैं और वायु ढाल के साथ-साथ ऊपर उठती है और इस स्थान को भरने के लिए वायु घाटी से बहती है। इन पवनों को घाटी समीर कहते हैं। रात्रि के समय पर्वतीय ढाल ठंडे हो जाते है और सघन वायु घाटी में नीचे उतरती है जिसे पर्वतीय पवनें कहते हैं। उच्च पठारों व हिम क्षेत्रों से घाटी में बहने वाली ठंडी वायु को अवरोही (Katabatic) पवनें कहते हैं। पर्वत श्रेणियों के पवनविमुख ढालों पर एक अन्य प्रकार की उष्ण पवनें प्रवाहित होती हैं।

पर्वत-श्रेणियों को पार करते हुए ये आर्द्र पवनें संघनित हो जाती हैं और वर्षण करती हैं। जब ये पवनें पवनविमुख ढालों पर नीचे उतरती हैं, तब यह शुष्क पवनें रूद्धोष्म (Adiabatic) प्रक्रिया से गर्म हो जाती हैं। ये शुष्क हवाएँ कम समय में बर्फ पिघला सकती हैं।

वायुराशियाँ (Air masses)

जब वायु किसी समांगी क्षेत्र पर पर्याप्त लंबे समय तक रहती है तो यह उस क्षेत्र के गुणों को धारण कर लेती है। यह समांग क्षेत्र विस्तृत महासागरीय सतह या विस्तृत मैदानी भाग हो सकता हैं। तापमान तथा आर्द्रता संबंधी विशिष्ट गुणों वाली यह वायु, *वायुराशि* कहलाती है। इसे यूँ भी परिभाषित किया जाता है - वायु का वह वृहत् भाग जिसमें तापमान व आर्द्रता संबंधी क्षैतिज भिन्नताएँ बहुत कम हैं। वह समांग धरातल जिन पर वायुराशियाँ बनती हैं उन्हें वायुराशियों का उद्गम क्षेत्र कहा जाता है।

वायुराशियों को उनके उद्गम क्षेत्र के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। इनके प्रमुख पाँच उद्गम क्षेत्र हैं। जो इस प्रकार हैं : 1. उष्ण व उपोष्ण कटिबंधीय महासागर 2. उपोष्णकटिबंधीय उष्ण मरुस्थल 3. उच्च अक्षांशीय अपेक्षाकृत ठंडे महासागर 4. उच्च अक्षांशीय अति शीत बर्फ आच्छादित महाद्वीपीय क्षेत्र 5. स्थायी रूप से बर्फ आच्छादित महाद्वीप अंटार्कटिक तथा आर्कटिक। इसी के आधार पर निम्न प्रकार की वायुराशियाँ पायी जाती हैं-

(i) उष्णकटिबंधीय महासागरीय वायुराशि (mT), (ii) उष्णकटिबंधीय महाद्वीपीय (cT), (iii) ध्रुवीय महासागीय (mP), (iv) ध्रुवीय महाद्वीपीय (cP), (v) महाद्वीपीय आर्कटिक (cA) उष्णकटिबंधीय वायुराशियाँ गर्म होती हैं तथा ध्रुवीय वायुराशियाँ ठंडी होती हैं।

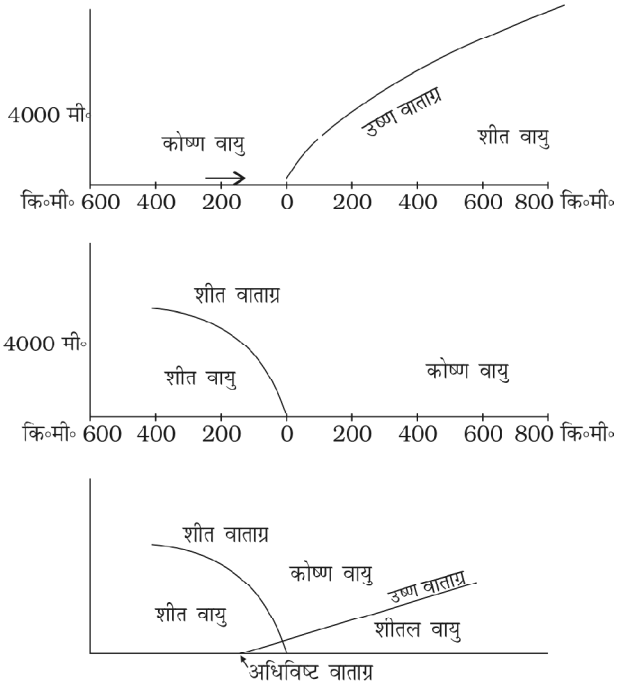

चित्र 10.8 : (अ) उष्ण वाताग्र, (ब) शीत वाताग्र तथा अधिविष्ट वाताग्र का खड़ा परिच्छेद

वाताग्र (Fronts)

जब दो भिन्न प्रकार की वायुराशियाँ मिलती हैं तो उनके मध्य सीमा क्षेत्र को *वाताग्र* कहते हैं। वाताग्रों के बनने की प्रक्रिया को वाताग्र-जनन (Frontogenesis) कहते हैं। वाताग्र चार प्रकार के होते हैं : (i) शीत वाताग्र (ii) उष्ण वाताग्र (iii) अचर वाताग्र (iv) अधिविष्ट वाताग्र जब वाताग्र स्थिर हो जाए तो इन्हें अचर वाताग्र कहा जाता है (अर्थात् ऐसे वाताग्र जब कोई भी वायु ऊपर नहीं उठती)। जब शीतल व भारी वायु आक्रामक रूप में उष्ण वायुराशियों को ऊपर धकेलती हैं, इस संपर्क क्षेत्र को शीत वाताग्र कहते हैं। यदि गर्म वायुराशियाँ आक्रामक रूप में ठंडी वायुराशियों के ऊपर चढ़ती हैं तो इस संपर्क क्षेत्र को उष्ण वाताग्र कहते हैं। यदि एक वायुराशि पूर्णत: धरातल के ऊपर उठ जाए तो ऐसे वाताग्र को अधिविष्ट वाताग्र कहते हैं। वाताग्र मध्य अक्षांशों में ही निर्मित होते हैं और तीव्र वायुदाब व तापमान प्रवणता इनकी विशेषता है। ये तापमान में अचानक बदलाव लाते हैं तथा इसी कारण वायु ऊपर उठती है, बादल बनते हैं तथा वर्षा होती है।

बहिरूष्ण कटिबंधीय चक्रवात (Extra tropical cyclones)

वे चक्रवातीय वायु प्रणालियाँ, जो उष्ण कटिबंध से दूर, मध्य व उच्च अक्षांशों में विकसित होती हैं, उन्हें बहिरूष्ण या शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवात कहते हैं। मध्य तथा उच्च अक्षांशों में जिस क्षेत्र से ये गुज़रते हैं, वहाँ मौसम संबंधी अवस्थाओं में अचानक तेजी से बदलाव आते हैं।

बहिरूष्ण कटिबंधीय चक्रवात ध्रुवीय वाताग्र के साथ-साथ

बनते है। आरम्भ में वाताग्र अचर होता है। उत्तरी गोलार्ध में वाताग्र के दक्षिण में कोष्ण व उत्तर दिशा से ठंडी हवा प्रवाहित होती है। जब वाताग्र के साथ वायुदाब कम हो जाता है, कोष्ण वायु उत्तर दिशा की ओर तथा ठंडी वायु दक्षिण दिशा में घड़ी की सुइयों के विपरीत चक्रवातीय परिसंचरण करती है। इस चक्रवातीय प्रवाह से बहिरूष्ण कटिबंधीय चक्रवात विकसित होता है जिसमें एक उष्ण वाताग्र तथा एक शीत वाताग्र होता है। चित्र 10.9 एक ऐसे ही विकसित चक्रवात को दर्शाता है। इस चक्रवात में कोष्ण वायु क्षेत्र या कोष्ण खंड ठंडे अग्रभाग व पिछले शीत खंड के बीच पाया जाता है। कोष्ण वायु आक्रामक रूप में ठंडी वायु के उपर चढ़ती है और उष्ण वाताग्र के पहले भाग में स्तरी मेघ दिखाई देते हैं और वर्षा होती है। पीछे से आता शीत वाताग्र उष्ण वायु को ऊपर धकेलता है, जिसके परिणामस्वरूप शीत वाताग्र के साथ कपासी मेघ बनते हैं। शीत वाताग्र उष्ण वाताग्र की अपेक्षा तीव्र गति से चलते हैं और अंततः उष्ण वाताग्रों को पूरी तरह ढक लेते हैं। यह कोष्ण वायु ऊपर उठती हैं और इस का भूतल से कोई संपर्क नहीं रहता तथा अधिविष्ट वाताग्र बनता है एवं चक्रवात धीरे-धीरे क्षीण हो जाता है।

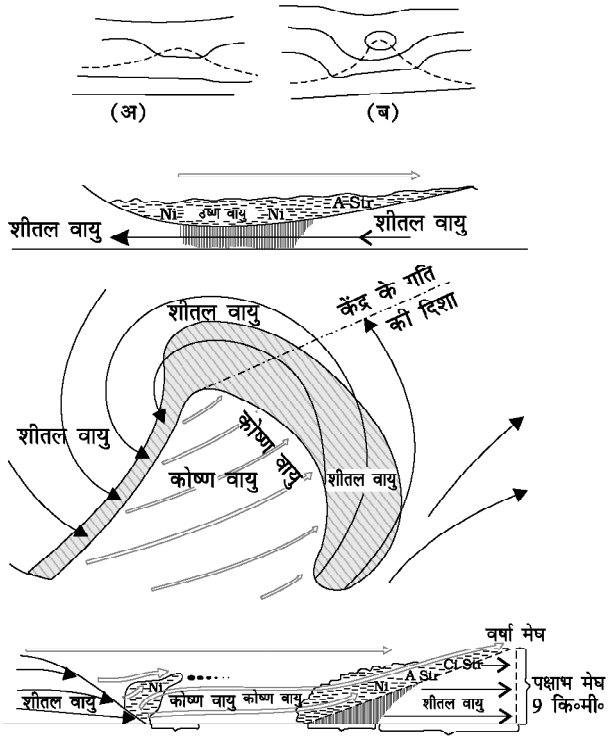

चित्र 10.9 : बहिरूष्ण कटिबंधीय चक्रवात

धरातल तथा ऊँचाई पर वायु परिसंचरण की प्रक्रियाओं में निकट का अंतर्संबंध होता है। बहिरूष्ण कटिबंधीय चक्रवात उष्णकटिबंधीय चक्रवातों से कई प्रकार भिन्न है। बहिरूष्ण कटिबंधीय चक्रवातों में स्पष्ट वाताग्र प्रणालियाँ होती हैं, जो उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों में नहीं होती। ये विस्तृत क्षेत्रफल पर फैले होते हैं तथा इनकी उत्पत्ति जल व स्थल दोनों पर होती है, जबकि उष्ण कटिबंधीय चक्रवात केवल समुद्रों में उत्पन्न होते हैं और स्थलीय भागों में पहुँचने पर नष्ट हो जाते हैं। बहिरूष्ण कटिबंधीय चक्रवात उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की अपेक्षा विस्तृत क्षेत्र को प्रभावित करते हैं। उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों में पवनों का वेग अपेक्षाकृत तीव्र होता है और ये विनाशकारी होते हैं। उष्ण कटिबंधीय चक्रवात पूर्व से पश्चिम को चलते हैं जबकि बहिरूष्ण कटिबंधीय चक्रवात पश्चिम से पूर्व दिशा में चलते हैं।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात आक्रामक तूफान हैं जिनकी उत्पत्ति उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों के महासागरों पर होती है और ये तटीय क्षेत्रों की तरफ गतिमान होते हैं। ये चक्रवात आक्रामक पवनों के कारण विस्तृत विनाश, अत्यधिक वर्षा और तूफान लाते हैं। ये चक्रवात विध्वंसक प्राकृतिक आपदाओं में से एक हैं। हिंद महासागर में ये 'चक्रवात' अटलांटिक महासागर में 'हरीकेन' के नाम से, पश्चिम प्रशांत और दक्षिण चीन सागर में 'टाइफून' और पश्चिमी आस्ट्रेलिया में 'विली-विलीज' के नाम से जाने जाते हैं।

उष्ण कटिबंधीय चक्रवात, उष्ण कटिबंधीय महासागरों में उत्पन्न व विकसित होते हैं। इनकी उत्पत्ति व विकास के लिए अनुकूल स्थितियाँ हैं : (i) बृहत् समुद्री सतह; जहाँ तापमान 27° सेल्सियस से अधिक हो; (ii) कोरिऑलिस बल का होना (iii) ऊर्ध्वाधर पवनों की गति में अंतर कम होना; (iv) कमजोर निम्न दाब क्षेत्र या निम्न स्तर का चक्रवातीय परिसंचरण का होना (v) समुद्री तल तंत्र पर ऊपरी अपसरण।

चक्रवातों को और अधिक विध्वंसक करने वाली ऊर्जा संघनन प्रक्रिया द्वारा ऊँचे कपासी स्तरी मेघों से प्राप्त होती है जो इस तूफान के केंद्र को घेरे होती है। समुद्रों से लगातार आर्द्रता की आपूर्ति से ये तूफान अधिक प्रबल होते हैं। स्थल पर पहुँचकर आर्द्रता की

आपूर्ति रुक जाती है और ये क्षीण होकर समाप्त हो जाते हैं। वह स्थान जहाँ से उष्ण कटिबंधीय चक्रवात तट को पार करके जमीन पर पहुँचते हैं चक्रवात का लैंडफाल कहलाता है। वे चक्रवात जो प्राय: 20° उत्तरी अक्षांश से गुजरते हैं, उनकी दिशा अनिश्चित होती है और ये अधिक विध्वंसक होते हैं।

एक विकसित उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की संरचना का ऊर्ध्वाधर क्रमिक विवरण चित्र 10.10 में दर्शाया गया है।

एक विकसित उष्ण कटिबंधीय चक्रवात की विशेषता इसके केंद्र के चारो तरफ प्रबल सर्पिल (Spiral) पवनों का परिसंचरण है, जिसे इसकी आँख (Eye) कहा जाता है। इस परिसंचरण प्रणाली का व्यास 150 से 250 किलोमीटर तक होता है।

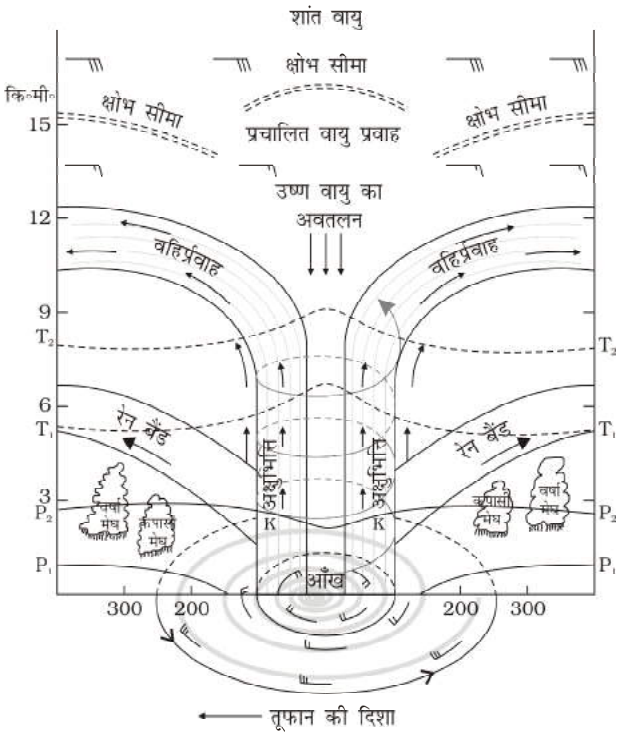

चित्र 10.10 : उष्ण कटिबंधीय चक्रवात का खड़ा परिच्छेद

इसका केंद्रीय (अक्षु) क्षेत्र शांत होता है, जहाँ पवनों का अवतलन होता है। अक्षु के चारों तरफ अक्षुभित्ति होती है जहाँ वायु का प्रबल व वृत्ताकार रूप में आरोहण होता है; यह आरोहण क्षोभसीमा की ऊँचाई तक पहुँचता है। इसी क्षेत्र में पवनों का वेग अधिकतम होता है जो 250 कि.मी. प्रति घंटा तक होता है। इन चक्रवातों से मूसलाधार वर्षा होती है। चक्रवात की आँख से रेनबैंड विकरित होते हैं तथा कपासी वर्षा बादलों की पंक्तियाँ बाहरी क्षेत्र की ओर विस्थापित हो सकती हैं। इनका व्यास बंगाल की खाड़ी, अरब सागर व हिंद महासागर पर 600 से 1,200 किलोमीटर के बीच होता है। यह परिसंचरण प्रणाली धीमी गति से 300 से 500 कि.मी. प्रति दिन की दर से आगे बढ़ते हैं। ये चक्रवात तूफान तरंग उत्पन्न करते हैं और तटीय निम्न इलाकों को जलप्लावित कर देते हैं। ये तूफान स्थल पर धीरे-धीरे क्षीण होकर खत्म हो जाते हैं।

तड़ितझंझा व टोरनेडो (Thunderstorms and Tornadoes)

अन्य विध्वंसक स्थानीय तूफान तड़ितझंझा तथा टोरनेडो हैं। ये अल्प समय के लिए रहते हैं, अपेक्षाकृत कम क्षेत्रफल तक सीमित होते हैं, परंतु आक्रामक होते हैं। तड़ितझंझा उष्ण आर्द्र दिनों में प्रबल संवहन के कारण उत्पन्न होते हैं। तड़ितझंझा एक पूर्ण विकसित कपासी वर्षी मेघ है जो गरज व बिजली उत्पन्न करते हैं। जब यह बादल अधिक ऊँचाई तक चले जाते हैं, जहाँ तापमान शून्य से कम रहता हैं, तो इससे ओले बनते हैं और ओलावृष्टि होती है। आर्द्रता कम होने पर ये तड़ितझंझा धूल भरी आंधियाँ लाते हैं। तड़ितझंझा की विशेषता उष्ण वायु का प्रबल ऊर्ध्वप्रवाह है, जिसके कारण बादलों का आकार बढ़ता है और ये अधिक ऊँचाई तक पहुँचते हैं। इसके कारण वर्षण होता है। तत्पश्चात् नीचे की तरफ वात प्रवाह पृथ्वी पर ठंडी वायु व वर्षा लाते हैं। भयानक तड़ितझंझा से कभी-कभी वायु आक्रामक रूप में हाथी की सूंड की तरह सर्पिल अवरोहण करती है। इसमें केंद्र पर अत्यंत कम वायुदाब होता है और यह व्यापक रूप से भयंकर विनाशकारी होते हैं। इस परिघटना को 'टोरनेडो' कहते हैं। टोरनेडो सामान्यत: मध्यअक्षांशों में उत्पन्न होते हैं। समुद्र पर टोरनेडो को जलस्तंभ (Water spouts) कहते हैं।

ये आक्रामक तूफान वायुमंडलीय ऊर्जा वितरण में भिन्नता (या अस्थिर वायु) के व्यवस्थित होने की अभिव्यक्ति है। इन तूफानों से स्थितिज व ताप ऊर्जा, गतिज ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है और अशांत वायुमंडलीय दशाएँ पुन: स्थिर स्थिति में लौट आती हैं।

अभ्यास

1. बहुवैकल्पिक प्रश्न :

(i) यदि धरातल पर वायुदाब 1,000 मिलीबार है तो धरातल से 1 कि॰मी॰ की ऊँचाई पर वायुदाब कितना होगा?

(क) 700 मिलीबार (ख) 900 मिलीबार

(ग) 1,100 मिलीबार (घ) 1,300 मिलीबार

(ii) अंतर उष्ण कटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र प्राय: कहाँ होता है?

(क) विषुवत् वृत्त के निकट (ख) कर्क रेखा के निकट

(ग) मकर रेखा के निकट (घ) आर्कटिक वृत्त के निकट

(iii) उत्तरी गोलार्ध में निम्नवायुदाब के चारों तरफ पवनों की दिशा क्या होगी?

(क) घड़ी की सुइयों के चलने की दिशा के अनुरूप

(ख) घड़ी की सुइयों के चलने की दिशा के विपरीत

(ग) समदाब रेखाओं के समकोण पर

(घ) समदाब रेखाओं के समानांतर

(iv) वायुराशियों के निर्माण के उद्गम क्षेत्र निम्नलिखित में से कौन-सा है :

(क) विषुवतीय वन (ख) साइबेरिया का मैदानी भाग

(ग) हिमालय पर्वत (घ) दक्कन पठार

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए :

(i) वायुदाब मापने की इकाई क्या है? मौसम मानचित्र बनाते समय किसी स्थान के वायुदाब को समुद्र तल तक क्यों घटाया जाता है?

(ii) जब दाब प्रवणता बल उत्तर से दक्षिण दिशा की तरफ हो अर्थात् उपोष्ण उच्च दाब से विषुवत वृत्त की ओर हो तो उत्तरी गोलार्ध में उष्णकटिबंध में पवनें उत्तरी पूर्वी क्यों होती हैं?

(iii) भूविक्षेपी पवनें क्या हैं?

(iv) समुद्र व स्थल समीर का वर्णन करें

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दीजिए :

(i) पवनों की दिशा व वेग को प्रभावित करने वाले कारक बताएँ?

(ii) पृथ्वी पर वायुमंडलीय सामान्य परिसंचरण का वर्णन करते हुए चित्र बनाएँ। 30° उत्तरी व दक्षिण अक्षांशों पर उपोष्ण कटिबंधीय उच्च वायुदाब के संभव कारण बताएँ?

(iii) उष्ण कटिबंधीय चक्रवातों की उत्पत्ति केवल समुद्रों पर ही क्यों होती है? उष्ण कटिबंधीय चक्रवात के किस भाग में मूसलाधार वर्षा होती है और उच्च वेग की पवनें चलती हैं और क्यों?

परियोजना कार्य

(i) मौसम पद्धति को समझने के लिए मीडिया, अखबार, दूरदर्शन तथा रेडिया से मौसम संबंधी सूचना का एकत्र कीजिए।

(ii) किसी अख़बार का मौसम संबंधी भाग, विशेषकर वह जिसमें उपग्रह से भेजा गया मानचित्र दिखाया गया है, पढ़ें। मेघाच्छादित क्षेत्र को रेखांकित करें। मेघों के वितरण से वायुमंडलीय परिसंचरण की व्याख्या करें। अख़बार व दूरदर्शन पर दिखाए गए पूर्वानुमान से तुलना करें। यह भी बताएं कि सप्ताह के कितने दिन पूर्वानुमान ठीक था।

अध्याय

11

वायुमंडल में जल

आप पढ़ चुके हैं कि हवा में जलवाष्प मौजूद होती है। इसमें वायुमंडल के आयतन में 0 से लेकर 4 प्रतिशत तक की भिन्नता पाई जाती है। मौसम की परिघटना में इसका महत्वपूर्ण योगदान होता है। जल वायुमंडल में तीन अवस्थाओं गैस, द्रव तथा ठोस के रूप में उपस्थित होता है। वायुमंडल में आर्द्रता, जलाशयों से वाष्पीकरण तथा पौधों में वाष्पोत्सर्जन से प्राप्त होती है। इस प्रकार वायुमंडल, महासागरों तथा महाद्वीपों के बीच जल का लगातार आदान-प्रदान वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, संघनन एवं वर्षा की प्रक्रिया द्वारा होता रहता है।

हवा में मौजूद जलवाष्प को आर्द्रता कहते हैं। मात्रात्मक दृष्टि से इसे विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया जाता है। वायुमंडल में मौजूद जलवाष्प की वास्तविक मात्रा को *निरपेक्ष आर्द्रता* कहा जाता है। यह हवा के प्रति इकाई आयतन में जलवाष्प का वजन है एवं इसे ग्राम प्रति घन मीटर के रूप में व्यक्त किया जाता है। हवा द्वारा जलवाष्प को ग्रहण करने की क्षमता पूरी तरह से तापमान पर निर्भर होती है। निरपेक्ष आर्द्रता पृथ्वी की सतह पर अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग होती है। दिए गए तापमान पर अपनी पूरी क्षमता की तुलना में वायुमंडल में मौजूद आर्द्रता के प्रतिशत को *सापेक्ष आर्द्रता* कहा जाता है। हवा के तापमान के बदलने के साथ ही आर्द्रता को ग्रहण करने की क्षमता बढ़ती है तथा सापेक्ष आर्द्रता भी प्रभावित होती है। यह महासागरों के ऊपर सबसे अधिक तथा महाद्वीपों के ऊपर सबसे कम होती है।

एक निश्चित तापमान पर जलवाष्प से पूरी तरह पूरित हवा को *संतृप्त* कहा जाता है। इसका मतलब यह है कि हवा इस स्थिति में दिए गए तापमान पर और अधिक आर्द्रता को ग्रहण करने में सक्षम नहीं है। हवा के दिए गए प्रतिदर्श (Sample) में जिस तापमान पर संतृप्ता आती है उसे *ओसांक* कहते हैं।

वाष्पीकरण तथा संघनन

वायुमंडल में जलवाष्प की मात्रा वाष्पीकरण तथा संघनन के कारण क्रमशः घटती-बढ़ती रहती है। वाष्पीकरण वह क्रिया है जिसके द्वारा जल द्रव से गैसीय अवस्था में परिवर्तित होता है। वाष्पीकरण का मुख्य कारण ताप है। जिस तापमान पर जल वाष्पीकृत होना शुरु करता है उसे वाष्पीकरण की *गुप्त ऊष्मा* कहा जाता है।

दिए गए हवा के अंश में जल को अवशोषित करने एवं धारण रखने की क्षमता तापमान में वृद्धि के साथ बढ़ती है। उसी प्रकार, यदि आर्द्रता कम है तो हवा में नमी को अवशोषित करने तथा धारण करने की क्षमता होती है। हवा की गति संतृप्त परत को असंतृप्त परत के द्वारा हटा देती है। इस प्रकार, हवा की गति जितनी तीव्र होगी वाष्पीकरण उतना ही तीव्र होगा।

जलवाष्प का जल के रूप में बदलना *संघनन* कहलाता है। ऊष्मा का ह्रास ही संघनन का कारण होता है। जब आर्द्र हवा ठंडी होती है, तब उसमें जलवाष्प को धारण रखने की क्षमता समाप्त हो जाती है। तब अतिरिक्त जलवाष्प द्रव में संघनित हो जाता है और जब यह सीधे ठोस रूप में परिवर्तित होते हैं तो इसे *ऊर्ध्वपातन* कहते हैं। स्वतंत्र हवा में, छोटे-छोटे कणों के चारों ओर ठंडा होने के कारण संघनन होता है तब इन छोटे-छोटे कणों को *संघनन केंद्रक* कहा जाता है। खासकर धूल, धुआं तथा महासागरों के नमक के कण अच्छे केंद्रक होते हैं क्योंकि वे पानी को अवशोषित करते हैं। संघनन उस अवस्था में भी होता है जब आर्द्र हवा कुछ ठंडी वस्तुओं

के संपर्क में आती है तथा यह उस समय भी हो सकता है जब तापमान ओसांक के नज़दीक हो। इस प्रकार संघनन ठंडा होने की मात्रा तथा हवा की सापेक्ष आर्द्रता पर निर्भर होता है। संघनन हवा के आयतन, ताप, दाब तथा आर्द्रता से प्रभावित होता है। संघनन तब होता है जब (i) वायु का आयतन नियत हो एवं तापमान ओसांक तक गिर जाए; (ii) वायु का आयतन तथा तापमान दोनों ही कम हो जाएँ; (iii) वाष्पीकरण द्वारा वायु में और अधिक जल वाष्प प्रविष्ट हो जाए। फिर भी, हवा के तापमान में कमी संघनन के लिए सबसे अच्छी अवस्था है।

संघनन के बाद, वायुमंडल की जलवाष्प या आर्द्रता निम्नलिखित में से एक रूप में परिवर्तित हो जाती है- ओस, कोहरा, तुषार एवं बादल। स्थिति एवं तापमान के आधार पर संघनन के प्रकारों को वर्गीकृत किया जा सकता है। संघनन तब होता है जब ओसांक जमाव बिंदु से नीचे होता है तथा तब भी संभव है जब ओसांक जमाव बिंदु से ऊपर होता है।

ओस

जब आर्द्रता धरातल के ऊपर हवा में संघनन केंद्रकों पर संघनित न होकर ठोस वस्तु जैसे पत्थर, घास, तथा पौधों की पत्तियों की ठंडी सतहों पर पानी की बूँदों के रूप में जमा होती है तब इसे ओस के नाम से जाना जाता है। इसके बनने के लिए सबसे उपयुक्त अवस्थाएँ साफ आकाश, शांत हवा, उच्च सापेक्ष आर्द्रता तथा ठंडी एवं लंबी रातें हैं। ओस के बनने के लिए यह आवश्यक है कि ओसांक जमाव बिंदु से ऊपर हो।

तुषार

तुषार ठंडी सतहों पर बनता है जब संघनन तापमान के जमाव बिंदु से नीचे (0°से.) चले जाने पर होता है, अर्थात् ओसांक जमाव बिंदु पर या उसके नीचे होता है। अतिरिक्त नमी पानी की बूँदों की बजाय छोटे-छोटे बर्फ के रवों के रूप में जमा होती हैं। उजले तुषार के बनने की सबसे उपयुक्त अवस्थाएँ, ओस के बनने की अवस्थाओं के समान हैं, केवल हवा का तापमान जमाव बिन्दु पर या उससे नीचे होना चाहिए।

कोहरा एवं कुहासा

जब बहुत अधिक मात्रा में जलवाष्प से भरी हुई वायु संहति अचानक नीचे की ओर गिरती है तब छोटे-छोटे धूल के कणों के ऊपर ही संघनन की प्रक्रिया होती है। इसलिए कोहरा एक बादल है जिसका आधार सतह पर या सतह के बहुत नज़दीक होता है। कोहरा तथा कुहासा के कारण दृश्यता कम से शून्य तक हो जाती है। नगरीय एवं औद्योगिक केंद्रों में धुएँ की अधिकता के कारण केंद्रकों की मात्रा की भी अधिकता होती है जो कोहरे और कुहासे के बनने में मदद देती हैं। ऐसी स्थिति को, जिसमें कोहरा तथा धुआँ सम्मिलित रूप से बनते हैं, 'धूम्र कोहरा' कहते हैं। कुहासे एवं कोहरे में केवल इतना अंतर होता है कि कुहासे में कोहरे की अपेक्षा नमी अधिक होती है। कुहासा पहाड़ों पर अधिक पाया जाता है, क्योंकि ऊपर उठती हुई गर्म हवा ढाल पर ठंडी सतह के संपर्क में आती है। कोहरे कुहासे की अपेक्षा अधिक शुष्क होते हैं तथा जहाँ गर्म हवा की धारा ठंडी हवा के संपर्क में आती है वहाँ ये प्रबल होते हैं। कोहरे छोटे बादल होते हैं जिसमें धूलकण, धुएँ के कण तथा नमक के कण होते हैं। केंद्रकों के चारों ओर संघनन की क्रिया होती है।

बादल

बादल पानी की छोटी बूँदों या बर्फ के छोटे रवों की संहति होता है जो कि पर्याप्त ऊँचाई पर स्वतंत्र हवा में जलवाष्प के संघनन के कारण बनते हैं। चूँकि बादल का निर्माण पृथ्वी की सतह से कुछ ऊँचाई पर होता है इसलिए ये विभिन्न आकारों के होते हैं। इनकी ऊँचाई, विस्तार, घनत्व तथा पारदर्शिता या अपारदर्शिता के आधार पर बादलों को चार रूपों में वर्गीकृत किया जाता है- (i) पक्षाभ मेघ; (ii) कपासी मेघ; (iii) स्तरी मेघ; (iv) वर्षा मेघ।

1. पक्षाभ मेघ

पक्षाभ मेघों का निर्माण 8,000-12,000 मी॰ की ऊँचाई पर होता है। ये पतले तथा बिखरे हुए बादल होते हैं, जो पंख के समान प्रतीत होते हैं। ये हमेशा सफेद रंग के होते हैं।

2. कपासी मेघ

कपासी मेघ रूई के समान दिखते हैं। ये प्राय: 4,000 से

7,000 मीटर की ऊँचाई पर बनते हैं। ये छितरे तथा इधर-उधर बिखरे देखे जा सकते हैं। ये चपटे आधार वाले होते हैं।

3. स्तरी मेघ

जैसा कि नाम से प्रतीत होता है ये परतदार बादल होते हैं जो कि आकाश के बहुत बड़े भाग पर फैले रहते हैं। ये बादल सामान्यत: या तो ऊष्मा के ह्रास या अलग-अलग तापमानों पर हवा के आपस में मिश्रित होने से बनते हैं।

चित्र 11.1

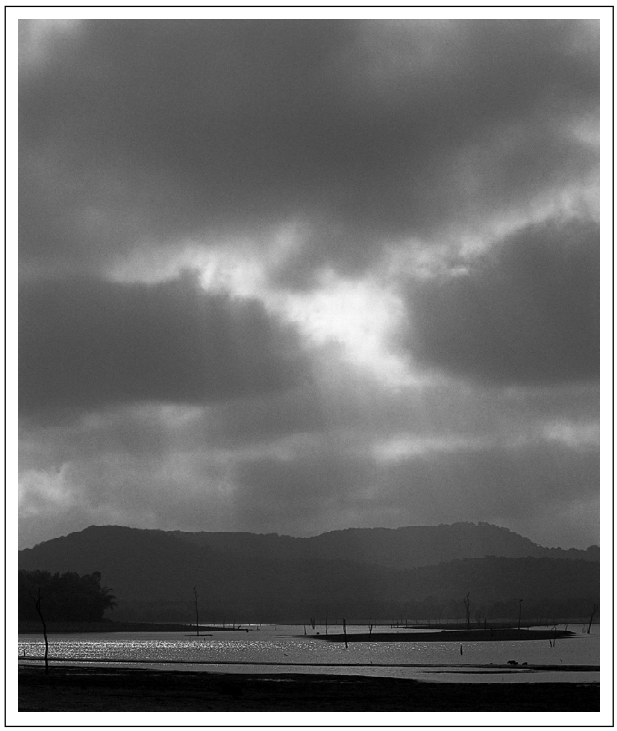

चित्र 11.2

चित्र 11.1 तथा 11.2 में दिखाए गए बादल किस प्रकार के हैं?

4. वर्षा मेघ

वर्षा मेघ काले या गहरे स्लेटी रंग के होते हैं। ये मध्य स्तरों या पृथ्वी के सतह के काफी नजदीक बनते हैं। ये सूर्य की किरणों के लिए बहुत ही अपारदर्शी होते हैं। कभी-कभी बादल इतनी कम ऊँचाई पर होते हैं कि ये सतह को छूते हुए प्रतीत होते हैं। वर्षा मेघ मोटे जलवाष्प की आकृति विहीन संहति होते हैं।

ये चार मूल रूपों के बादल मिलकर निम्नलिखित रूपों के बादलों का निर्माण करते हैं-

ऊँचे बादल - पक्षाभ, पक्षाभ स्तरी, पक्षाभ कपासी, मध्य ऊँचाई के बादल - स्तरी मध्य तथा कपासी मध्य, कम ऊँचाई के बादल - स्तरी कपासी, स्तरी वर्षा मेघ एवं कपासी वर्षा मेघ।

वर्षण

स्वतंत्र हवा में लगातार संघनन की प्रक्रिया संघनित कणों के आकार को बड़ा करने में मदद करती है। जब हवा का प्रतिरोध गुरुत्वाकर्षण बल के विरुद्ध उनको रोकने में असफल हो जाता है तब ये पृथ्वी की सतह पर गिरते हैं। इसलिए जलवाष्प के संघनन के बाद नमी के मुक्त होने की अवस्था को *वर्षण* कहते हैं। यह द्रव या ठोस अवस्था में हो सकता है। वर्षण जब पानी के रूप में होता है उसे *वर्षा* कहा जाता है, जब तापमान 0°से० से कम होता है तब वर्षण हिमतूलों के रूप में होता है जिसे *हिमपात* कहते हैं। नमी षट्कोणीय रवों के रूप में निर्मुक्त होती है। ये रवे हिमतूलों का निर्माण करते हैं। वर्षा तथा हिमपात के अतिरिक्त वर्षण के दूसरे प्रकार *सहिम वृष्टि* तथा *करकापात* हैं, यद्यपि करकापात काफी सीमित मात्रा में होता है एवं समय तथा क्षेत्र की दृष्टि से यदाकदा ही होता है।

सहिम वृष्टि जमी हुई वर्षा की बूँदे हैं या पिघली हुई बर्फ के पानी की जमी हुई बूँदें हैं। जमाव बिंदु के तापमान के साथ जब वायु की एक परत सतह के नजदीक आधे जमे हुए परत पर गिरती है तब सहिम वृष्टि होती है। वर्षा की बूँदें जो गर्म हवा से निकलती हैं तथा नीचे की ओर ठंडी हवा से मिलती हैं। इसके परिणामस्वरूप, वे ठोस हो जाती हैं तथा सतह पर वर्षा की बूँदों से भी छोटे आकार में बर्फ के रूप में गिरती हैं।

कभी-कभी वर्षा की बूँदें बादल से मुक्त होने के बाद बर्फ के छोटे गोलाकार ठोस टुकड़ों में परिवर्तित हो जाती हैं तथा पृथ्वी की सतह पर पहुँचती हैं जिसे *ओलापत्थर* कहा जाता है। ये वर्षा के जल से बनती हैं जो कि ठंडी परतों से होकर गुजरती हैं। ये ओला पत्थर एक के ऊपर एक बर्फ की कई सकेंद्रीय परतों वाले होते हैं।

वर्षा के प्रकार

उत्पत्ति के आधार पर वर्षा को तीन प्रमुख प्रकारों में बाँटा जा सकता है- संवहनीय, पर्वतीय तथा चक्रवातीय या फ्रंटल

संवहनीय वर्षा

हवा गर्म हो जाने पर हल्की होकर संवहन धाराओं के रूप में ऊपर की ओर उठती है, वायुमंडल की ऊपरी परत में पहुँचने के बाद यह फैलती है तथा तापमान के कम होने से ठंडी होती है। परिणामस्वरूप संघनन की क्रिया होती है तथा कपासी मेघों का निर्माण होता है। गरज तथा बिजली कड़कने के साथ मूसलाधार वर्षा होती है, लेकिन यह बहुत लंबे समय तक नहीं रहती है। इस प्रकार की वर्षा गर्मियों में या दिन के गर्म समय में प्रायः होती है। यह विषुवतीय क्षेत्र तथा खासकर उत्तरी गोलार्ध के महाद्वीपों के भीतरी भागों में प्रायः होती है।

पर्वतीय वर्षा

जब संतृप्त वायु की संहति पर्वतीय ढाल पर आती है, तब यह ऊपर उठने के लिए बाध्य हो जाती है तथा जैसे ही यह ऊपर की ओर उठती है, यह फैलती है, तापमान गिर जाता है तथा आर्द्रता संघनित हो जाती है। इस प्रकार की वर्षा का मुख्य गुण है कि पवनाभिमुख ढाल पर सबसे अधिक वर्षा होती है। इस भाग में वर्षा होने के बाद ये हवाएँ दूसरे ढाल पर पहुँचती हैं, वे नीचे की ओर उतरती हैं तथा उनका तापमान बढ़ जाता है। तब उनकी आर्द्रता धारण करने की क्षमता बढ़ जाती है एवं इस प्रकार, प्रतिपवन ढाल सूखे तथा वर्षा विहीन रहते हैं। प्रतिपवन भाग में स्थित क्षेत्र, जिनमें कम वर्षा होती है उसे *वृष्टि छाया क्षेत्र* कहा जाता है। यह पर्वतीय वर्षा या स्थलकृत वर्षा के नाम से जानी जाती है।

चक्रवातीय वर्षा या फ्रंटल वर्षा

आप पहले ही इस पुस्तक के दसवें अध्याय में बहिरूष्ण कटिबंधीय चक्रवातों तथा चक्रवाती वर्षा का अध्ययन कर चुके हैं, अतः चक्रवाती वर्षा समझने के लिए अध्याय दस को देखें।

संसार में वर्षा वितरण

एक साल में पृथ्वी की सतह पर अलग-अलग भागों में होने वाली वर्षा की मात्रा भिन्न-भिन्न होती है तथा यह अलग-अलग मौसमों में भी होती है।

सामान्य तौर पर जब हम विषुवत् वृत्त से ध्रुव की तरफ जाते हैं, वर्षा की मात्रा धीरे-धीरे घटती जाती है। विश्व के तटीय क्षेत्रों में महाद्वीपों के भीतरी भागों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। विश्व के स्थलीय भागों की अपेक्षा महासागरों के ऊपर वर्षा अधिक होती है, क्योंकि वहां पानी के स्रोत की अधिकता के कारण वाष्पीकरण की क्रिया लगातार होती रहती है। विषवत् वृत्त से 35° से 40° उ0 एवं द0 अक्षांशों के मध्य, पूर्वी तटों पर बहुत अधिक वर्षा होती है तथा पश्चिम की तरफ यह घटती जाती है। लेकिन विषुवत् वृत्त से 45° तथा 65° उ0 एवं द0 के बीच पछुआ पवनों के कारण सबसे पहले महाद्वीपों के पश्चिमी किनारों पर वर्षा होती है तथा यह पूर्व की तरफ घटती जाती है। जहाँ भी पहाड़ तट के समानांतर हैं, वहां वर्षा की मात्रा पवनाभिमुख तटीय मैदान में अधिक होती है एवं यह प्रतिपवन दिशा की तरफ घटती जाती है।

वार्षिक वर्षण की कुल मात्रा के आधार पर विश्व की मुख्य वर्षण प्रवृति को निम्नलिखित रूपों में पहचाना जाता है:

विषुवतीय पट्टी, शीतोष्ण प्रदेशों में पश्चिमी तटीय किनारों के पास के पर्वतों के वायु की ढाल पर तथा मानसून वाले क्षेत्रों के तटीय भागों में वर्षा बहुत अधिक होती है, जो प्रति वर्ष 200 से॰मी॰ से ऊपर होती है। महाद्वीपों के आंतरिक भागों में प्रतिवर्ष 100 से 200 से॰मी॰ वर्षा होती है। महाद्वीपों के तटीय क्षेत्रों में वर्षा की मात्रा मध्यम होती है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र के केंद्रीय भाग तथा शीतोष्ण क्षेत्रों के पूर्वी एवं भीतरी भागों में वर्षा की मात्रा 50 से 100 से॰मी॰ प्रतिवर्ष तक होती है।

महाद्वीप के भीतरी भाग के वृष्टि छाया क्षेत्रों में पड़ने वाले भाग तथा ऊँचे अक्षांशों वाले क्षेत्रों में प्रतिवर्ष 50 से॰मी॰ से भी कम वर्षा होती है। वर्षा का मौसमी वितरण इसकी प्रभाविता को समझने का एक महत्वपूर्ण पहलू है। कुछ क्षेत्रों जैसे विषुवतीय पट्टी तथा ठंडे समशीतोष्ण प्रदेशों में वर्षा पूरे वर्ष होती रहती है।

अभ्यास

1. बहुवैकल्पिक प्रश्न :

(i) मानव के लिए वायुमंडल का सबसे महत्वपूर्ण घटक निम्नलिखित में से कौन सा है-
(क) जलवाष्प (ख) धूलकण
(ग) नाइट्रोजन (घ) ऑक्सीजन

(ii) निम्नलिखित में से वह प्रक्रिया कौन सी है जिसके द्वारा जल, द्रव से गैस में बदल जाता है-
(क) संघनन (ख) वाष्पीकरण
(ग) वाष्पोत्सर्जन (घ) अवक्षेपण

(iii) निम्नलिखित में से कौन सा वायु की उस दशा को दर्शाता है जिसमें नमी उसकी पूरी क्षमता के अनुरूप होती है-
(क) सापेक्ष आर्द्रता (ख) निरपेक्ष आर्द्रता
(ग) विशिष्ट आर्द्रता (घ) संतृप्त हवा

(iv) निम्नलिखित प्रकार के बादलों में से आकाश में सबसे ऊँचा बादल कौन सा है?
(क) पक्षाभ (ख) वर्षा मेघ
(ग) स्तरी (घ) कपासी

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए :

(i) वर्षण के तीन प्रकारों के नाम लिखें।
(ii) सापेक्ष आर्द्रता की व्याख्या कीजिए।
(iii) ऊँचाई के साथ जलवाष्प की मात्रा तेजी से क्यों घटती है?
(iv) बादल कैसे बनते हैं? बादलों का वर्गीकरण कीजिए।

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दीजिए :

(i) विश्व के वर्षण वितरण के प्रमुख लक्षणों की व्याख्या कीजिए।
(ii) संघनन के कौन-कौन से प्रकार हैं? ओस एवं तुषार के बनने की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।

परियोजना कार्य

1 जून से 31 दिसंबर तक के समाचार पत्रों से सूचनाएँ एकत्र कीजिए कि देश के किन भागों में अत्यधिक वर्षा हुई।

अध्याय

12

विश्व की जलवायु एवं जलवायु परिवर्तन

विश्व की जलवायु का अध्ययन जलवायु संबंधी आंकड़ों एवं जानकारियों को संगठित करके किया जा सकता है। इन आँकड़ों को आसानी से समझने व उनका वर्णन और विश्लेषण करने के लिए उन्हें अपेक्षाकृत छोटी इकाइयों में बाँटकर संश्लेषित किया जा सकता है। जलवायु का वर्गीकरण तीन वृहत् उपगमनों द्वारा किया गया है। वे हैं – आनुभविक, जननिक और अनुप्रयुक्त। आनुभविक वर्गीकरण प्रेक्षित किए गए विशेष रूप से तापमान एवं वर्णन से संबंधित आँकड़ों पर आधारित होता है। जननिक वर्गीकरण जलवायु को उनके कारणों के आधार पर संगठित करने का प्रयास है। जलवायु का अनुप्रयुक्त वर्गीकरण किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए किया जाता है।

कोपेन की जलवायु वर्गीकरण की पद्धति

वी. कोपेन द्वारा विकसित की गई जलवायु के वर्गीकरण की आनुभविक पद्धति का सबसे व्यापक उपयोग किया जाता है। कोपेन ने वनस्पति के वितरण और जलवायु के बीच एक घनिष्ठ संबंध की पहचान की। उन्होंने तापमान तथा वर्षण के कुछ निश्चित मानों का चयन करते हुए उनका वनस्पति के वितरण से संबंध स्थापित किया और इन मानों का उपयोग जलवायु के वर्गीकरण के लिए किया। वर्षा एवं तापमान के मध्यमान वार्षिक एवं मध्यमान मासिक आँकड़ों पर आधारित यह एक आनुभविक पद्धति है। उन्होंने जलवायु के समूहों एवं प्रकारों की पहचान करने के लिए बड़े तथा छोटे अक्षरों के प्रयोग का आरंभ किया। सन् 1918 मे विकसित तथा समय के साथ संशोधित हुई कोपेन की यह पद्धति आज भी लोकप्रिय और प्रचलित है।

कोपेन ने पाँच प्रमुख जलवायु समूह निर्धारित किए जिनमें से चार तापमान पर और एक वर्षण पर आधारित है। कोपेन के जलवायु समूह एवं उनकी विशेषताओं को सारणी 12.1 में दिया गया है।

बड़े अक्षर A, C, D तथा E आर्द्र जलवायु को तथा

सारणी 12.1 कोपेन के अनुसार जलवायु समूह

समूह	*लक्षण*
A. उष्णकटिबंधीय	सभी महीनों का औसत तापमान 18° सेल्सियस से अधिक।
B. शुष्क जलवायु	वर्षण की तुलना में विभव वाष्पीकरण की अधिकता।
C. कोष्ण शीतोष्ण	सर्वाधिक ठंडे महीने का औसत तापमान 3° सेल्सियस से अधिक किन्तु 18° सेल्सियस से कम मध्य अक्षांशीय जलवायु।
D. शीतल हिम-वन जलवायु	वर्ष के सर्वाधिक ठंडे महीने का औसत तापमान शून्य अंश तापमान से 3° नीचे।
E. शीत	सभी महीनों का औसत तापमान 10° सेल्सियस से कम।
H. उच्चभूमि	ऊँचाई के कारण शीत।

B अक्षर शुष्क जलवायु को निरूपित करता है। जलवायु समूहों को तापक्रम एवं वर्षा की मौसमी विशेषताओं के आधार पर कई उप-प्रकारों में विभाजित किया गया है जिसको छोटे अक्षरों द्वारा अभिहित किया गया है। शुष्कता वाले मौसमों को छोटे अक्षरों f,m,w और s द्वारा इंगित किया गया है। इसमें f शुष्क मौसम के न होने को m मानसून जलवायु को w शुष्क शीत ऋतु को और s शुष्क ग्रीष्म ऋतु को इंगित करता है छोटे अक्षर a,b,c तथा d तापमान की उग्रता वाले भाग को दर्शाते हैं। B समूह की जलवायु को उपविभाजित करते हुए स्टेपी अथवा अर्ध-शुष्क के लिए S तथा मरुस्थल के लिए W जैसे बड़े अक्षरों का प्रयोग किया गया है। जलवायु प्रकारों को सारणी 12.2 में दिखाया गया है। जलवायु समूहों एवं प्रकारों का वितरण सारणी 12.1 में दर्शाया गया है।

सारणी 12.2 : कोपेन के अनुसार जलवायु प्रकार

समूह	*प्रकार*	*कूट अक्षर*	*लक्षण*
A उष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु	उष्णकटिबंधीय आर्द्र	Af	कोई शुष्क ऋतु नहीं।
	उष्णकटिबंधीय मानसून	Am	मानसून, लघु शुष्क ऋतु
	उष्णकटिबंधीय आर्द्र एंव शुष्क	Aw	जाड़े की शुष्क ऋतु
B शुष्क जलवायु	उपोष्ण कटिबंधीय स्टैपी	BSh	निम्न अक्षांशीय अर्ध शुष्क एवं शुष्क
	उपोष्ण कटिबंधीय मरूस्थल	BWh	निम्न अक्षांशीय शुष्क
	मध्य अक्षांशीय स्टैपी	BSk	मध्य अक्षांशीय अर्ध शुष्क अथवा शुष्क
	मध्य अक्षांशीय मरूस्थल	BWk	मध्य अक्षांशीय शुष्क
C कोष्ण शीतोष्ण (मध्य अक्षांशीय जलवायु)	आर्द्र उपोष्ण कटिबंधीय	Cfa	मध्य अक्षांशीय अर्धशुष्क अथवा शुष्क
	भूमध्य सागरीय	Csa	शुष्क गर्म ग्रीष्म
	समुद्री पश्चिम तटीय	Cfb	कोई शुष्क ऋतु नहीं, कोष्ण तथा शीतल ग्रीष्म
D शीतल हिम-वन जलवायु	आर्द्र महाद्वीपीय	Df	कोई शुष्क ऋतु नहीं, भीषण जाड़ा
	उप-उत्तर ध्रुवीय	Dw	जाड़ा शुष्क तथा अत्यंत भीषण
E शीत जलवायु	टुंड्रा	ET	सही अर्थो में कोई ग्रीष्म नहीं
	ध्रुवीय हिमटोपी	EF	सदैव हिमाच्छादित हिम
F उच्च भूमि	उच्च भूमि	H	हिमाच्छादित उच्च भूमियाँ

समूह A उष्णकटिबंधीय जलवायु

उष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु कर्क रेखा और मकर रेखा के बीच पाई जाती है। संपूर्ण वर्ष सूर्य के ऊर्ध्वस्थ तथा अंतर उष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र की उपस्थिति के कारण यहाँ की जलवायु ऊष्ण एवं आर्द्र रहती है। यहाँ वार्षिक तापांतर बहुत कम तथा वर्षा अधिक होती है। जलवायु के इस उष्णकटिबंधीय समूह को तीन प्रकारों में बाँटा जाता है, जिनके नाम हैं (i) Af उष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु; (ii) Am उष्णकटिबंधीय मानसून जलवायु और (iii) Aw उष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु जिसमें शीत ऋतु शुष्क होती है।

उष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु (Af)

उष्णकटिबंधीय आर्द्र जलवायु विषुवत् वृत्त के निकट पाई जाती है। इस जलवायु के प्रमुख क्षेत्र दक्षिण अमेरिका का अमेजन बेसिन, पश्चिमी विषुवतीय अफ्रीका तथा दक्षिणी पूर्वी एशिया के द्वीप हैं। वर्ष के प्रत्येक माह में दोपहर के बाद गरज और बौछारों के साथ प्रचुर मात्रा में वर्षा होती है। तापमान समान रूप से ऊँचा और वार्षिक तापांतर नगण्य होता है। किसी भी दिन अधिकतम तापमान लगभग 30° सेल्सियस और न्यूनतम तापमान लगभग 20° सेल्सियस होता है। इस जलवायु में सघन वितान तथा व्यापक जैव-विविधता वाले उष्णकटिबंधीय सदाहरित वन पाए जाते हैं।

उष्णकटिबंधीय मानसून जलवायु (Am)

उष्णकटिबंधीय मानूसन जलवायु भारतीय उपमहाद्वीप, दक्षिण अमेरिका के उत्तर-पूर्वी भाग तथा उत्तरी आस्ट्रेलिया में पाई जाती है। भारी वर्षा अधिकतर गर्मियों में होती है। शीत ऋतु शुष्क होती है। जलवायु के इस प्रकार का विस्तृत जलवायवी विवरण *'भारत : भौतिक पर्यावरण', एन.सी.आर.टी., 2006* में दिया गया है।

उष्णकटिबंधीय आर्द्र एवं शुष्क जलवायु (Aw)

उष्णकटिबंधीय आर्द्र एवं शुष्क जलवायु Af प्रकार के जलवायु प्रदेशों के उत्तर एवं दक्षिण में पाई जाती है। इसकी सीमा महाद्वीपों के पश्चिमी भाग में शुष्क जलवायु के साथ और पूर्वी भाग में Cf तथा Cw प्रकार की जलवायु के साथ पाई जाती है। विस्तृत Aw जलवायु दक्षिण अमेरिका में स्थित ब्राजील के वनों के उत्तर और दक्षिण में बोलिविया और पैरागुए के निकटवर्ती भागों तथा सूडान और मध्य अफ्रीका के दक्षिण में पाई जाती है। इस जलवायु में वार्षिक वर्षा Af तथा Am जलवायु प्रकारों की अपेक्षा काफी कम तथा विचरणशील है। आर्द्र ऋतु छोटी और शुष्क ऋतु भीषण व लंबी होती है। तापमान वर्ष भर ऊँचा रहता है और शुष्क ऋतु में दैनिक तापांतर सर्वाधिक होते हैं। इस जलवायु में पर्णपाती वन और पेड़ों से ढकी घासभूमियाँ पाई जाती है।

शुष्क जलवायु-B

शुष्क जलवायु की विशेषता अत्यंत न्यून वर्षा है जो पादपों की वृद्धि के लिए पर्याप्त नहीं होती। यह जलवायु पृथ्वी के बहुत बड़े भाग पर पाई जाती है जो विषुवत् वृत्त से 15° से 60° उत्तर व दक्षिणी अक्षांशों के बीच विस्तृत है। 15° से 30° के निम्न अंक्षाशों में यह उपोष्ण कटिबंधीय उच्च वायुदाब क्षेत्र में पाई जाती है। जहाँ तापमान का अवतलन और उत्क्रमण, वर्षा नहीं होने देते। महाद्वीपों के पश्चिमी सीमांतों पर, ठंडी धाराओं के आसन्न क्षेत्र, विशेषत: दक्षिण अमेरिका के पश्चिमी तट पर, यह जलवायु विषुवत् वृत्त की ओर अधिक विस्तृत है और तटीय भाग में पाई जाती है। मध्य अक्षांशों में विषुवत् वृत्त से 35° से 60° उत्तर व दक्षिण के बीच यह जलवायु महाद्वीपों के उन आंतरिक भागों तक परिरूद्ध होती है जहाँ पर्वतों से घिरे होने के कारण प्राय: समुद्री आर्द्र पवनें नहीं पहुँच पातीं।

शुष्क जलवायु को स्टेपी अथवा अर्ध-शुष्क जलवायु (BS) और मरूस्थल जलवायु (BW) में विभाजित किया जाता है। इसे आगे 15° से 35° अक्षांशों के बीच उपोष्ण कटिबंधीय स्टेपी (BSh) और उपोष्ण कटिबंधीय मरूस्थल (BWh) में बाँटा जाता है। 35° और 60° अंक्षाशों के बीच इसे मध्य अक्षांशीय स्टेपी (BSk) तथा मध्य अक्षांशीय मरूस्थल (BWk) मे विभाजित किया जाता है।

उपोष्ण कटिबंधीय स्टेपी (BSh) एवं
उपोष्ण कटिबंधीय मरूस्थल (BWh) जलवायु

उपोष्ण कटिबंधीय स्टेपी (BSh) एवं उपोष्ण कटिबंधीय मरूस्थल (BWh) जलवायु में वर्षण और तापमान के लक्षण एक समान होते हैं। आर्द्र एंव शुष्क जलवायु के संक्रमण क्षेत्र में अवस्थित होने के कारण उपोष्ण कटिबंधीय स्टेपी जलवायु में मरूस्थल जलवायु की अपेक्षा वर्षा थोड़ी ज्यादा होती है जो विरल घासभूमियों के लिए पर्याप्त होती है। वर्षा दोनों ही जलवायु में परिवर्तनशीलता होती है। वर्षा की परिवर्तनशीलता मरूस्थल की अपेक्षा स्टेपी में जीवन को अधिक प्रभावित करती है। इससे कई बार अकाल की स्थिति पैदा हो जाती है। मरूस्थलों में वर्षा थोड़ी किंतु गरज के साथ तीव्र बौछारों के रूप में होती है, जो मृदा में नमी पैदा करने में अप्रभावी सिद्ध होती है। ठंडी धाराओं तापमान लगते तटीय मरूस्थलों में कोहरा एक आम बात है। ग्रीष्मऋतु में अधिकतम तापमान बहुत ऊँचा होता है। लीबिया के अल-अजीज़िया में 13 सितंबर 1922 को उच्चतम तापमान 58° सेल्सियस दर्ज किया गया था। इस जलवायु में वार्षिक और दैनिक तापांतर भी अधिक पाए जाते हैं।

कोष्ण शीतोष्ण (मध्य अक्षांशीय) जलवायु - C

कोष्ण शीतोष्ण (मध्य अक्षांशीय) जलवायु 30° से 50° अक्षांशों के मध्य मुख्यत: महाद्वीपों के पूर्वी और पश्चिमी सीमांतों पर विस्तृत है। इस जलवायु में सामान्यत: ग्रीष्म ऋतु कोष्ण और शीत ऋतु मृदुल होती है। इस जलवायु को चार प्रकारों में वर्गीकृत किया गया है: (i) आर्द्र उपोष्ण कटिबंधीय, अर्थात सर्दियों में शुष्क और गर्मियों में उष्ण (Cwa) (ii) भूमध्यसागरीय (Cs) (iii) आर्द्र उपोष्ण कटिबंधीय अर्थात् शुष्क ऋतु की अनुपस्थिति तथा मृदु शीत ऋतु (Cfa) (iv) समुद्री पश्चिम तटीय जलवायु (Cfb)।

आर्द्र उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु (Cwa)

आर्द्र उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु कर्क एवं मकर रेखा से ध्रुवों की ओर मुख्यत: भारत के उत्तरी मैदान और दक्षिणी चीन के आंतरिक मैदानों में पाई जाती है। यह जलवायु Aw जलवायु जैसी ही है, केवल इतना अपवाद है कि इसमे सर्दियों का तापमान कोष्ण होता है।

भूमध्यसागरीय जलवायु (Cs)

जैसा कि नाम से स्पष्ट है भूमध्य सागरीय जलवायु भूमध्य सागर के चारों ओर तथा उपोष्ण कटिबंध से 30° से 40° अक्षांशों के बीच महाद्वीपों के पश्चिमी तट के साथ-साथ पाई जाती है। मध्य केलिफोर्निया, मध्य चिली तथा आस्ट्रेलिया के दक्षिण-पूर्वी और दक्षिण-पश्चिमी तट इसके उदाहरण हैं। ये क्षेत्र ग्रीष्म ऋतु में उपोष्ण कटिबंधीय उच्च वायुदाब तथा शीत ऋतु में पछुआ पवनों के प्रभाव में आ जाते हैं। इस प्रकार उष्ण व शुष्क गर्मियाँ तथा मृदु एवं वर्षायुक्त सर्दियाँ इस जलवायु की विशेषताएँ हैं। ग्रीष्म ऋतु में औसत मासिक तापमान 25° सेल्सियस के आस-पास तथा शीत ऋतु में 10° सेल्सियस से कम रहता है। वार्षिक वर्षा 35 से 90 से.मी. के बीच होता है।

आर्द्र उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु (Cfa)

आर्द्र उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु उपोष्ण कटिबंधीय अक्षांशों में महाद्वीपों के पूर्वी भागों में पाई जाती है। इस प्रदेश में वायुराशियाँ प्राय: अस्थिर रहती हैं और पूरे वर्ष वर्षा करती हैं। यह जलवायु पूर्वी संयुक्त राज्य अमेरिका, दक्षिणी तथा पूर्वी चीन, दक्षिणी जापान, उत्तर-पूर्वी अर्जेंटीना, तटीय दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के पूर्वी तट पर पाई जाती है। औसत वार्षिक वर्षा 75 से 150 से.मी. के बीच रहती है। ग्रीष्म ऋतु में तड़ितझंझा और शीतऋतु में वाताग्री वर्षण सामान्य विशेषताएँ हैं। ग्रीष्म ऋतु में औसत मासिक तापमान लगभग 27° सेल्सियस होता है जबकि जाड़ों में यह 5° से 12° सेल्सियस के बीच रहता है। दैनिक तांपातर बहुत कम होता है।

समुद्री पश्चिम तटीय जलवायु (Cfb)

समुद्री पश्चिम तटीय जलवायु महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर भूमध्य सागरीय जलवायु से ध्रुवों की ओर पाई जाती है। इस जलवायु के प्रमुख क्षेत्र हैं - उत्तर-पश्चिमी यूरोप, उत्तरी अमेरिका का पश्चिमी तट, उत्तरी केलिफोर्निया, दक्षिण चिली, दक्षिण-पूर्वी आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड। यहाँ समुद्री प्रभाव के कारण तापमान मध्यम होते हैं और शीत ऋतु में अपने अक्षांशों की तुलना में कोष्ण होते हैं। गर्मी के महीनों में औसत तापमान 15° से 20° सेल्सियस और सर्दियों में 4° से 10° सेल्सियस के बीच रहता है। वार्षिक और दैनिक तापांतर कम पाया जाता हैं। वर्षण साल भर होती है लेकिन यह सर्दियों में अधिक होती है। वर्षण 50 से.मी. से 250 से.मी. के बीच घटती बढ़ती रहती है।

शीत हिम-वन जलवायु (D)

शीत हिम-वन जलवायु उत्तरी गोलार्द्ध में 40° से 70° अक्षांशों के बीच यूरोप, एशिया और उत्तर अमेरिका के विस्तृत महाद्वीपीय क्षेत्रों में पाई जाती है। शीत हिम वन जलवायु को दो प्रकारों में विभक्त किया जाता है: (i) Df आर्द्र जाड़ों से युक्त ठंडी जलवायु और (ii) Dw शुष्क जाड़ों से युक्त ठंडी जलवायु उच्च अक्षांशों में सर्दी की उग्रता अधिक मुखर होती है।

आर्द्र जाड़ों से युक्त ठंडी जलवायु (Df)

आर्द्र जाड़ों से युक्त ठंडी जलवायु समुद्री पश्चिम तटीय जलवायु और मध्य अक्षांशीय स्टैपी जलवायु से ध्रुवों की ओर पाई जाती है। जाड़े ठंडे और बर्फीले होते हैं। तुषार-मुक्त ऋतु छोटी होती है। वार्षिक तापांतर अधिक होता है। मौसमी परिवर्तन आकस्मिक और अल्पकालिक होते हैं। ध्रुवों की ओर सर्दियाँ अधिक उग्र होती हैं।

शुष्क जाड़ों से युक्त ठंडी जलवायु (DW)

शुष्क जाड़ों से युक्त ठंडी जलवायु मुख्यत: उत्तर-पूर्वी एशिया में पाई जाती है। जाड़ों में प्रतिचक्रवात का स्पष्ट विकास तथा ग्रीष्म ऋतु में उसका कमजोर पड़ना इस क्षेत्र में पवनों के प्रत्यार्वन की मानसून जैसी दशाएँ उत्पन्न करते हैं। ध्रुवों की ओर गर्मियों में तापमान कम होते हैं और जाड़ों में तापमान अत्यंत न्यून होती है। कुछ स्थान तो ऐसे भी हैं, जहाँ वर्षा के सात महीने तक तापमान हिमांक बिंदु से कम रहता हैं। वार्षिक वर्षा कम होती है जो 12 से 15 से.मी. के बीच होती है।

ध्रुवीय जलवायु (E)

ध्रुवीय जलवायु 70° अक्षांश से परे ध्रुवों की ओर पाई जाती है। ध्रुवीय जलवायु दो प्रकार की होती है: (i) टुण्ड्रा (ET) (ii) हिम टोपी (EF)।

टुण्ड्रा जलवायु (ET)

टुण्ड्रा जलवायु का नाम काई, लाइकान तथा पुष्पी पादप जैसे छोटे वनस्पति प्रकारों के आधार पर रखा गया है। यह स्थायी तुषार का प्रदेश है जिसमें अधोभूमि स्थायी रूप से जमी रहती है। लघुवर्धन काल और जलाक्रांति छोटी वनस्पति का ही पोषण कर पाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में टुण्ड्रा प्रदेशों में दिन के प्रकाश की अवधि लंबी होती है।

हिमटोप जलवायु (EF)

हिमटोप जलवायु ग्रीनलैंड और अंटार्कटिका के आंतरिक भागों में पाई जाती है। गर्मियों में भी तापमान हिमांक से नीचे रहता है। इस क्षेत्र में वर्षा थोड़ी मात्रा में होती है। तुषार एवं हिम एकत्रित होती जाती है जिनका बढ़ता हुआ दबाव हिम परतों को विकृत कर देता है। हिम परतों के ये टुकड़े आर्कटिक एवं अंटार्कटिक जल में खिसक कर प्लावी हिम शैलों के रूप में तैरने लगते हैं। अंटार्कटिक में 79° दक्षिण अक्षांश पर ''प्लेट्यू स्टेशन'' पर भी यही जलवायु पाई जाती है।

उच्च भूमि जलवायु (F)

उच्च भूमि जलवायु भौम्याकृति द्वारा नियंत्रित होती है। ऊँचे पर्वतों में थोड़ी-थोड़ी दूरियों पर मध्यमान तापमान में भारी परिवर्तन पाए जाते हैं। उच्च भूमियों में वर्षण के प्रकारों व उनकी गहनता में भी स्थानिक अंतर पाए जाते हैं। पर्वतीय वातावरण में ऊँचाई के साथ जलवायु प्रदेशों के स्तरित ऊर्ध्वाधर कटिबंध पाए जाते हैं।

जलवायु परिवर्तन

जिस प्रकार की जलवायु का अनुभव हम अब कर रहे हैं वह थोड़े बहुत उतार चढ़ाव के साथ विगत 10 हज़ार वर्षों से अनुभव की जा रही है। अपने प्रादुर्भाव से ही पृथ्वी ने जलवायु में अनेक परिवर्तन देखे हैं। भूगर्भिक अभिलेखों से हिमयुगों और अंतर-हिमयुगों में क्रमशः परिवर्तन की प्रक्रिया परिलक्षित होती है। भू-आकृतिक लक्षण, विशेषतः ऊँचाईयों तथा उच्च अक्षांशों में हिमानियों के आगे बढ़ने व पीछे हटने के शेष चिह्न प्रदर्शित करते हैं। हिमानी निर्मित झीलों में अवसादों का निक्षेपण उष्ण एवं शीत युगों के होने को उजागर करता है। वृक्षों के तनों में पाए जाने वाले वलय भी आर्द्र एवं शुष्क युगों की उपस्थिति का संकेत देते हैं। ऐतिहासिक अभिलेख भी जलवायु की अनिश्चितता का वर्णन करते हैं। ये सभी साक्ष्य इंगित करते हैं कि जलवायु परिवर्तन एक प्राकृतिक एवं सतत प्रक्रिया है।

भारत में भी आर्द्र एवं शुष्क युग आते जाते रहे हैं। पुरातत्व खोजें दर्शाती हैं कि ईसा से लगभग 8,000 वर्ष पूर्व राजस्थान मरुस्थल की जलवायु आर्द्र एवं शीतल थी। ईसा से 3,000 से 1,700 वर्ष पूर्व यहाँ वर्षा अधिक होती थी। लगभग 2,000 से 1,700 वर्ष ईसा पूर्व यह क्षेत्र हड़प्पा संस्कृति का केंद्र था। शुष्क दशाएँ तभी से गहन हुई हैं।

लगभग 50 करोड़ से 30 करोड़ वर्ष पहले भू-वैज्ञानिक काल के कैंब्रियन, आर्डोविसियन तथा सिल्युरियन युगों में पृथ्वी गर्म थी। प्लीस्टोसीन युगांतर के दौरान हिमयुग और अंतर हिमयुग अवधियाँ रही हैं। अंतिम प्रमुख हिमयुग आज से 18,000 वर्ष पूर्व था। वर्तमान अंतर हिमयुग 10,000 वर्ष पूर्व आरंभ हुआ था।

अभिनव पूर्व काल में जलवायु

सभी कालों में जलवायु परिवर्तन होते रहे हैं। पिछली शताब्दी के 90 के दशक में चरम मौसमी घटनाएँ घटित हुई हैं। 1990 के दशक में शताब्दी का सबसे गर्म तापमान और विश्व में सबसे भयंकर बाढ़ों को दर्ज किया है। सहारा मरुस्थल के दक्षिण में स्थित साहेल प्रदेश में 1967 से 1977 के दौरान आया विनाशकारी सूखा ऐसा ही एक परिवर्तन था। 1930 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका के बृहत मैदान के दक्षिण-पश्चिमी भाग में, जिसे 'धूल का कटोरा' कहा जाता है, भीषण सूखा पड़ा। फसलों की उपज अथवा फसलों के विनाश, बाढ़ों तथा लोगों के प्रवास संबंधी ऐतिहासिक अभिलेख परिवर्तनशील जलवायु के प्रभावों के बारे में बताते हैं। यूरोप अनेकों बार उष्ण, आर्द्र, शीत एवं शुष्क युगों से गुजरा है। इनमें से महत्त्वपूर्ण प्रसंग 10 वीं और 11 वीं शताब्दी की उष्ण एवं शुष्क दशाओं का है, जिनमें वाइकिंग कबीले ग्रीनलैंड में जा बसे थे। यूरोप ने सन् 1550 से सन् 1850 के दौरान लघु हिम युग

का अनुभव किया है। 1885 से 1940 तक विश्व के तापमान में वृद्धि की प्रवृत्ति पाई गई है। 1940 के बाद तापमान में वृद्धि की दर घटी है।

जलवायु परिवर्तन के कारण

जलवायु परिवर्तन के अनेक कारण हैं। इन्हें खगोलीय और पार्थिव कारणों में वर्गीकृत किया जा सकता है। खगोलीय कारणों का सबंध सौर कलंकों की गतिविधियों से उत्पन्न सौर्यिक निर्गत ऊर्जा में परिवर्तन से है। सौर कलंक सूर्य पर काले धब्बे होते हैं, जो एक चक्रीय, ढंग से घटते-बढ़ते रहते हैं। कुछ मौसम वैज्ञानिकों के अनुसार सौर कंलकों की संख्या बढ़ने पर मौसम ठंडा और आर्द्र हो जाता है और तूफानों की संख्या बढ़ जाती है। सौर कलंकों की संख्या घटने से उष्ण एवं शुष्क दशाएँ उत्पन्न होती हैं यद्यपि ये खोजें आँकड़ों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

एक अन्य खगोलीय सिद्धांत 'मिलैंकोविच दोलन' है, जो सूर्य के चारों ओर पृथ्वी के कक्षीय लक्षणों में बदलाव के चक्रों, पृथ्वी की डगमगाहट तथा पृथ्वी के अक्षीय झुकाव में परिवर्तनों के बारे में अनुमान लगाता है। ये सभी कारक सूर्य से प्राप्त होने वाले सूर्यातप में परिवर्तन ला देते हैं। जिसका प्रभाव जलवायु पर पड़ता है।

ज्वालामुखी क्रिया जलवायु परिवर्तन का एक अन्य कारण है। ज्वालामुखी उद्‌भेदन वायुमंडल में बड़ी मात्रा में ऐरोसोल फेंक देता है। ये ऐरोसोल लंबे समय तक वायुमंडल में विद्यमान रहते हैं और पृथ्वी की सतह पर पहुँचने वाले सौर्यिक विकिरण को कम कर देते हैं। हाल ही में हुए पिनाटोबा तथा एल सियोल ज्वालामुखी उद्‌भेदनों के बाद पृथ्वी का औसत तापमान कुछ हद तक गिर गया था।

जलवायु पर पड़ने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण मानवोद्‌भवी कारण वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों का बढ़ता सांद्रण है। इससे भूमंडलीय ऊष्मन हो सकता है।

भूमंडलीय ऊष्मन

ग्रीन हाउस गैसों की उपस्थिति के कारण वायुमंडल एक ग्रीनहाउस की भांति व्यवहार करता है। वायुमंडल प्रवेशी सौर विकिरण का पारेषण भी करता है किंतु पृथ्वी की सतह से ऊपर की ओर उत्सर्जित होने वाली अधिकतम् दीर्घ तरंगों को अवशोषित कर लेता है। वे गैसें जो विकिरण की दीर्घ तरंगों का अवशोषण करती हैं, ग्रीनहाउस गैसें कहलाती हैं। वायुमंडल का तापन करने वाली प्रक्रियाओं को सामूहिक रूप से 'ग्रीनहाउस प्रभाव' (Green house effect) कहा जाता है।

> ग्रीनहाउस शब्द का साम्यानुमान उस ग्रीनहाउस से लिया गया है। जिसका उपयोग ठंडे इलाकों में ऊष्मा का परिरक्षण करने के लिए किया जाता है। ग्रीनहाउस काँच का बना होता है। काँच प्रवेशी सौर विकिरण की लघु तरंगों के लिए पारदर्शी होता है मगर बहिर्गामी विकिरण की दीर्घ तरंगों के लिए अपारदर्शी। इस प्रकार काँच अधिकाधिक विकिरण को आने देता है और दीर्घ तरंगों वाले विकिरण को काँच घर से बाहर जाने से रोकता है। इससे ग्रीनहाउस इमारत के भीतर बाहर की अपेक्षा तापमान अधिक हो जाता है। जब आप गर्मियों में किसी बंद खिड़कियों वाली कार अथवा बस में प्रवेश करते हैं तो आप बाहर की अपेक्षा अधिक गर्मी अनुभव करते हैं। इसी प्रकार जाड़ों में बंद दरवाज़ों व खिड़कियों वाला वाहन बाहर की अपेक्षा गर्म रहता है। यह ग्रीनहाउस प्रभाव का एक अन्य उदाहरण है।

ग्रीनहाउस गैसें (GHGs)

वर्तमान में चिंता का कारण बनी मुख्य ग्रीनहाउस गैसें कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) क्लोरो-फ्लोरोकार्बन्स (CFCs), मीथेन (CH_4) नाइट्रस ऑक्साईड (N_2O) और ओज़ोन (O_3) हैं। कुछ अन्य गैसें जैसे नाइट्रिक ऑक्साइड (NO) और कार्बन मोनोक्साइड (CO) आसानी से ग्रीनहाउस गैसों से प्रतिक्रिया करती हैं और वायुमंडल में उनके सांद्रण को प्रभावित करती हैं। किसी भी ग्रीनहाउस गैस का प्रभाव इसके सांद्रण में वृद्धि के परिमाण, वायुमंडल में इसके जीवन काल तथा इसके द्वारा अवशोषित विकिरण की तरंग लंबाई पर निर्भर करता है। क्लोरो-फ्लोरोकार्बन अत्यधिक प्रभावी होते हैं। समताप मंडल में पराबैंगनी किरणों को अवशोषित करने वाली ओज़ोन जब निम्न समताप मंडल में उपस्थित होती है, तो वह पार्थिव विकिरण को अत्यंत प्रभावी ढंग से अवशोषित करती है। एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि ग्रीनहाउस गैसों के अणु जितने लंबे समय तक बने रहते हैं इनके द्वारा लाए गए परिवर्तनों से पृथ्वी के

वायुमंडलीय तंत्र को उबरने में उतना अधिक समय लगता है। वायुमंडल में उपस्थित ग्रीनहाउस गैसों में सबसे अधिक सांद्रण कार्बन डाईऑक्साइड का है। CO_2 का उत्सर्जन मुख्यत: जीवाश्मी ईंधनों (तेल, गैस एंव कोयला) के दहन से होता है। वन और महासागर कार्बन डाईऑक्साइड के कुंड होते हैं। वन अपनी वृद्धि के लिए CO_2 का उपयोग करते हैं। अत: भूमि उपयोग में परिवर्तनों के कारण की गई जंगलों की कटाई भी CO_2 की मात्रा बढ़ाती है। अपने स्रोतों में हुए परिवर्तनों से समंजित करने के लिए CO_2 को 20 से 50 वर्ष लग जाते हैं। यह लगभग 0.5 प्रतिशत की वार्षिक दर से बढ़ रही है। जलवायवी मॉडलों में जलवायु में होने वाले परिवर्तनों का आंकलन CO_2 की मात्रा को पूर्व औद्योगिक स्तर से दुगुना करके किया जाता है।

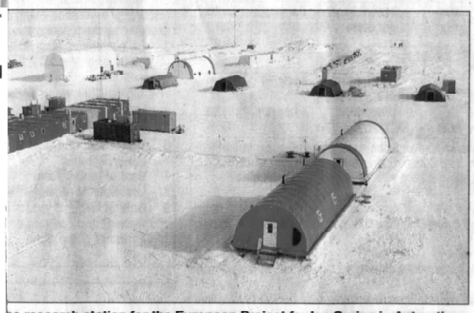

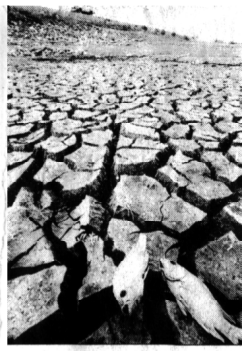

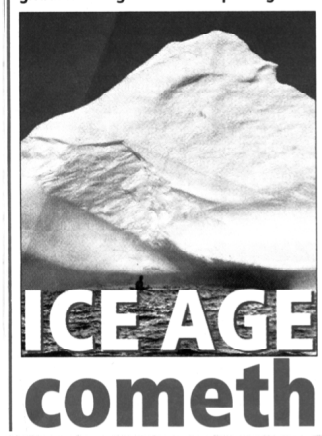

क्लोरो-फ्लोरोकार्बन मानवीय गतिविधियों से पैदा होते है। ओज़ोन समताप मंडल में उपस्थित होती है, जहाँ पराबैंगनी किरणें ऑक्सीजन को ओज़ोन में बदल देती है। इससे पराबैंगनी किरणें पृथ्वी की सतह पर नहीं पहुँच पातीं। समताप मंडल में वाहित होने वाली ग्रीनहाउस गैसें भी ओज़ोन को नष्ट करती हैं। ओज़ोन का सबसे अधिक ह्रास अंटार्कटिका के ऊपर हुआ है। समताप मंडल में ओज़ोन के सांद्रण का ह्रास ओज़ोन छिद्र कहलाता है। यह छिद्र पराबैंगनी किरणों को क्षोभमंडल से गुज़रने देता है।

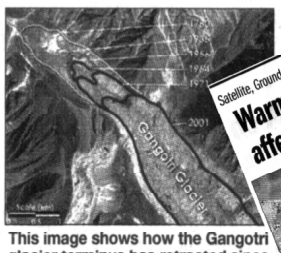

वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास किए गए हैं। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण 'क्योटो प्रोटोकॉल' है जिसकी उद्घोषणा सन् 1997 में की गई थी। सन् 2005 में प्रभावी हुई इस उद्घोषणा का 141 देशों ने अनुमोदन किया है क्योटो प्रोटोकॉल ने 35 औद्योगिक राष्ट्रों को

भूमंडलीय ऊष्मन पर एक व्याख्यात्मक टिप्पणी लिखें।

परिबद्ध किया कि वे सन् 1990 के उत्सर्जन स्तर में वर्ष 2012 तक 5 प्रतिशत की कमी लायें।

वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के सांद्रण में वृद्धि की प्रवृत्ति आगे चलकर पृथ्वी को गर्म कर सकती है। एक बार भूमंडलीय ऊष्मन के आरंभ हो जाने पर इसे उलटना बहुत मुश्किल होगा। भूमंडलीय ऊष्मन का प्रभाव हर जगह एक समान नहीं हो सकता। तथापि भूमंडलीय ऊष्मन के दुष्प्रभाव जीवन पोषक तंत्र को कुप्रभावित कर सकते हैं। हिमटोपियों व हिमनदियों के पिघलने से ऊँचा उठा समुद्री जल का स्तर और समुद्र का ऊष्मीय विस्तार तटीय क्षेत्र के विस्तृत भागों और द्वीपों को आप्लावित कर सकता है। इससे सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होंगी। विश्व समुदाय के लिए यह गहरी चिंता का एक और विषय है। ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को नियंत्रित करने और भूमंडलीय ऊष्मन की प्रवृत्ति को रोकने के लिए प्रयास आरंभ हो चुके हैं। हमें आशा है कि विश्व समुदाय इस चुनौती का प्रत्युत्तर देगा और एक ऐसी जीवन शैली को अपनाएगा जिससे आने वाली पीढ़ियों के लिए यह संसार रहने के लायक रह सकेगा।

आज भूमंडलीय ऊष्मन विश्व की प्रमुख चिंताओं में से एक है, आइए देखें कि दर्ज तापमानों के आधार पर यह कितना गर्म हो चुका है।

तापमान के उपलब्ध आँकड़ें 19वीं शताब्दी के पश्चिमी यूरोप के हैं, इस अध्ययन की संदर्भित अवधि 1961-80 है। इससे पहले व बाद की अवधियों की तापमान की अंसगतियों का अनुमान 1961-90 की अवधि के औसत तापमान से लगाया गया है। पृथ्वी के धरातल के निकट वायु का औसत वार्षिक तापमान लगभग 14° सैल्सियस है। काल श्रेणी 1961-90 के ग्लोब के सामान्य तापमान की तुलना मे 1856-2000 के दौरान पृथ्वी के धरातल के निकट वार्षिक तापमान में असंगति को दर्शाती है।

तापमान के बढ़ने की प्रवृत्ति 20वीं शताब्दी में दिखाई दी। 20वीं शताब्दी में सबसे अधिक तापन दो अवधियों में हुआ है–1901-44 और 1977-99। इन दोनों में से प्रत्येक अवधि में भूमंडलीय ऊष्मन 0.4° सेल्सियस बढ़ा है। इन दोनों अवधियों के बीच थोड़ा शीतलन भी हुआ जो उत्तरी गोलार्ध में अधिक चिह्नित था।

20वीं शताब्दी के अंत में औसत वार्षिक तापमान का वैश्विक अध्ययन 19वीं शताब्दी में दर्ज किए गए तापमान में 0.6° सेल्सियस अधिक था। 1856-2000 के दौरान सबसे गर्म साल अंतिम दशक में दर्ज किया गया था। सन् 1998 संभवत: न केवल 20वीं शताब्दी का बल्कि पूरी सहस्राब्दि का सबसे गर्म वर्ष था।

अभ्यास

1. **बहुवैकल्पिक प्रश्न :**

(i) कोपेन के A प्रकार की जलवायु के लिए निम्न में से कौन सी दशा अर्हक हैं?
(क) सभी महीनों में उच्च वर्षा
(ख) सबसे ठंडे महीने का औसत मासिक तापमान हिमांक बिंदु से अधिक
(ग) सभी महीनों का औसत मासिक तापमान 18° सेल्सियस से अधिक
(घ) सभी महीनों का औसत तापमान 10° सेल्सियस के नीचे

(ii) जलवायु के वर्गीकरण से संबंधित कोपेन की पद्धति को व्यक्त किया जा सकता है–
(क) अनुप्रयुक्त (ख) व्यवस्थित (ग) जननिक (घ) आनुभविक

(iii) भारतीय प्रायद्वीप के अधिकतर भागों को कोपेन की पद्धति के अनुसार वर्गीकृत किया जायेगा–
(क) "Af" (ख) "BSh" (ग) "Cfb" (घ) "Am"

(iv) निम्नलिखित में से कौन सा साल विश्व का सबसे गर्म साल माना गया है–
(क) 1990 (ख) 1998 (ग) 1885 (घ) 1950

(v) नीचे लिखे गए चार जलवायु के समूहों में से कौन आर्द्र दशाओं को प्रदर्शित करता हैं?
(क) A-B-C-E (ख) A-C-D-E (ग) B-C-D-E (घ) A-C-D-F

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए :

(i) जलवायु के वर्गीकरण के लिए कोपेन के द्वारा किन दो जलवायविक चरों का प्रयोग किया गया है ?
(ii) वर्गीकरण की जननिक प्रणाली आनुभविक प्रणाली से किस प्रकार भिन्न है?
(iii) किस प्रकार की जलवायुओं में तापांतर बहुत कम होता है?
(iv) सौर कलंकों में वृद्धि होने पर किस प्रकार की जलवायविक दशाएँ प्रचलित होंगी?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दीजिए :

(i) A एवं B प्रकार की जलवायुओं की जलवायविक दशाओं की तुलना करें।
(ii) C तथा A प्रकार के जलवायु में आप किस प्रकार की वनस्पति पाएँगे?
(iii) ग्रीनहाउस गैसों से आप क्या समझते हैं? ग्रीनहाउस गैसों की एक सूची तैयार करें?

परियोजना कार्य

भूमंडलीय जलवायु परिवर्तनों से संबंधित 'क्योटो प्रोटोकॉल' से संबंधित जानकारियाँ एकत्रित कीजिए।

इकाई
V

जल (महासागर)

इस इकाई के विवरण :

जलीय चक्र;

महासागर - अंत: समुद्री उच्चावच, लवणता एवं तापमान का वितरण; महासागरीय-तरंगें, ज्वार भाटा एवं धाराएँ।

अध्याय

13

महासागरीय जल

क्या आप जल के बिना जीवन की कल्पना कर सकते हैं? कहा जाता है कि जल ही जीवन है। जल पृथ्वी पर रहने वाले सभी प्रकार के जीवों के लिए आवश्यक घटक है। पृथ्वी के जीव सौभाग्यशाली हैं कि यह एक जलीय ग्रह है। अन्यथा, हम लोगों का अस्तित्व ही नहीं होता। जल हमारे सौर मंडल का दुर्लभ पदार्थ है। सूर्य अथवा सौरमंडल में अन्यत्र कहीं भी जल नहीं है। सौभाग्य से पृथ्वी के धरातल पर जल की प्रचुर आपूर्ति है। हमारे ग्रह को 'नीला ग्रह' (Blue planet) भी कहा जाता है।

जलीय चक्र

जल एक चक्रीय संसाधन है जिसका प्रयोग एवं पुन: प्रयोग किया जा सकता है। जल एक चक्र के रूप में महासागर से धरातल पर और धरातल से महासागर तक पहुँचता है। जलीय चक्र, पृथ्वी पर, इसके नीचे व पृथ्वी के ऊपर वायुमंडल में जल के संचलन की व्याख्या करता है। जलीय चक्र करोड़ों वर्षों से कार्यरत है और पृथ्वी पर सभी प्रकार का जीवन इसी पर निर्भर करता है। वायु के बाद, जल पृथ्वी पर जीवन के अस्तित्त्व के लिए सबसे आवश्यक तत्त्व है। पृथ्वी पर जल का वितरण असमान है। बहुत से क्षेत्रों में, जल की प्रचुरता है, जबकि बहुत से क्षेत्रों में यह सीमित मात्रा में उपलब्ध है। जलीय चक्र पृथ्वी के जलमंडल में विभिन्न रूपों अर्थात् गैस, तरल व ठोस में जल का परिसंचरण है। इसका संबंध महासागरों, वायुमंडल, भूपृष्ठ, अध:स्तल और जीवों के बीच जल के सतत् आदान-प्रदान से भी है।

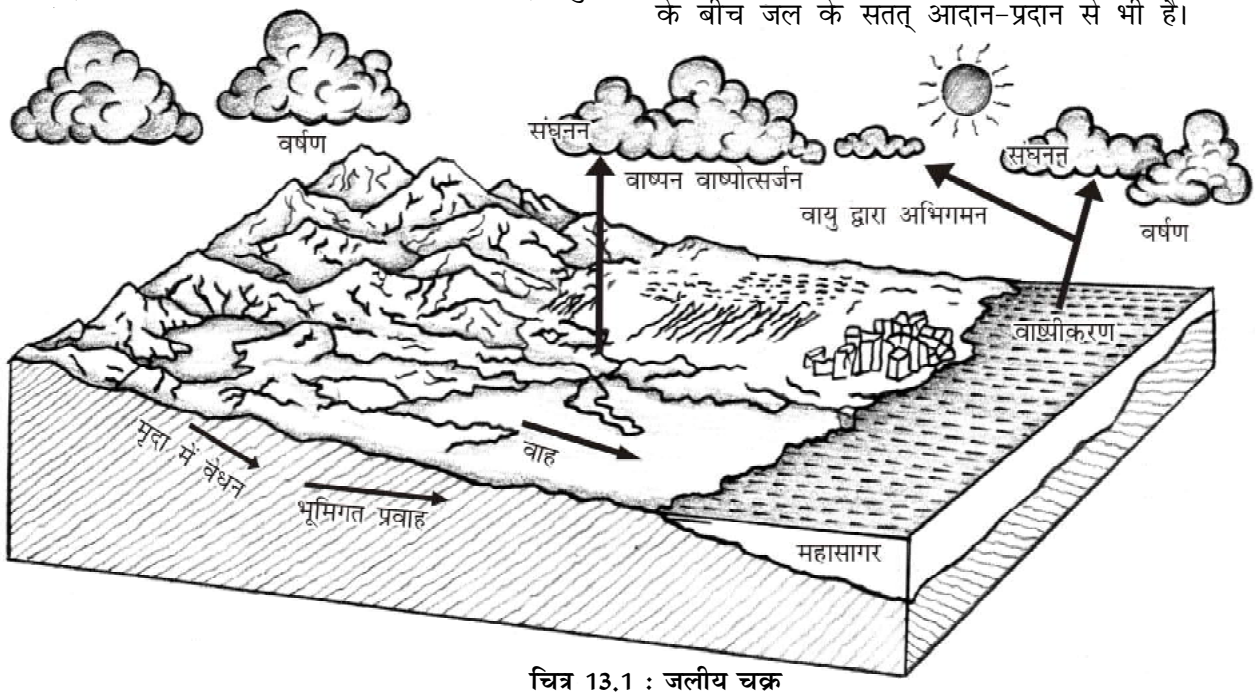

चित्र 13.1 : जलीय चक्र

सारणी 13.1 : पृथ्वी पर जल का वितरण

जलाशय	*आयतन (दस लाख घन कि॰मी॰)*	*कुल का प्रतिशत*
महासागर	1,370	97.25
हिमानियाँ एवं हिमटोपी	29	2.05
भूमिगत जल	9.5	0.68
झीलें	0.125	0.01
मृदा में नमी	0.065	0.005
वायुमंडल	0.013	0.001
नदी-नाले	0.0017	0.0001
जैवमंडल	0.0006	0.00004

सारणी 13.2 : जल चक्र के घटक एवं प्रक्रियाएँ

घटक	*प्रक्रियाएँ*
महासागरों में संग्रहित जल	*वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, ऊर्ध्वपातन*
वायुमंडल में जल	संघनन, वर्षण
हिम एवं बर्फ में पानी का संग्रहण	हिम पिघलने पर नदी-नालों के रूप में बहना
धरातलीय जल बहाव	जलधारा के रूप में, ताजा जल संग्रहण व जल रिसाव
भौम जल संग्रहण	भौम जल का विसर्जन, झरनें

सारणी 13.1 पृथ्वी के धरातल पर जल के वितरण को दर्शाती है। पृथ्वी पर पाए जाने वाले जल का लगभग 71 प्रतिशत भाग महासागरों में पाया जाता है। शेष जल ताज़े जल के रूप में हिमानियों, हिमटोपी, भूमिगत जल, झीलों, मृदा में आर्द्रता वायुमंडल, सरिताओं और जीवों में संग्रहीत है। धरातल पर गिरने वाले जल का लगभग 59 प्रतिशत भाग महासागरों एवं अन्य स्थानों से वाष्पीकरण के द्वारा वायुमंडल में चला जाता है। शेष भाग धरातल पर बहता है; कुछ भूमि में रिस जाता है और कुछ भाग हिमनदी का रूप ले लेता है। (चित्र 13.1)।

उल्लेखनीय है कि पृथ्वी पर नवीकरण योग्य जल निश्चित मात्रा में है, जबकि माँग तेज़ी से बढ़ती जा रही है। इसके कारण विश्व के विभिन्न भागों में स्थानिक एवं कालिक दोनों रूपों में जल का संकट पैदा हो जाता है। नदी जल के प्रदूषण ने इस संकट को और अधिक बढ़ा दिया है। आप जल की गुणवत्ता को कैसे सुधार सकते हैं तथा जल की उपलब्ध मात्रा में वृद्धि कर सकते हैं?

महासागरीय अधस्तल का उच्चावच

महासागर पृथ्वी की बाहरी परत में वृहत गर्तों में स्थित है। इस खंड में, हम पृथ्वी के महासागरीय बेसिनों की प्रकृति एवं उनकी भू-आकृति का अध्ययन करेंगे। महाद्वीपों के विपरीत महासागर एक दूसरे में इतने स्वाभाविक ढंग से विलय हो जाते हैं कि उनका सीमांकन करना कठिन हो जाता है। भूगोलविदों ने पृथ्वी के महासागरीय भाग को पांच महासागरों में विभाजित किया है। उनके नाम हैं- प्रशांत, अटलांटिक, हिंद, दक्षिणी महासागर एवं आर्कटिक। अनेक समुद्र, खाड़ियाँ, गल्फ़ तथा अन्य निवेशिकाएँ इन पांच बड़े महासागरों के भाग हैं।

महासागरीय अधस्तल का प्रमुख भाग समुद्र तल के नीचे 3 से 6 कि॰मी॰ के बीच पाया जाता है। महासागरों के जल के नीचे की भूमि, अर्थात् महासागरीय अधस्तल, भूमि पर पाए जाने वाले लक्षणों की अपेक्षा जटिल तथा विभिन्न प्रकार के लक्षणों को प्रदर्शित करती है। (चित्र 13.2)। महासागरों की तली में, विश्व की सबसे बड़ी पर्वत श्रृंखलाएँ, सबसे गहरे गर्त एवं सबसे बड़े मैदान होने के कारण ये ऊबड़-खाबड़ होते हैं। महाद्वीपों पर पाए जाने वाले लक्षणों की तरह ये लक्षण भी विर्वतनिक, ज्वालामुखीय एवं निक्षेपण की क्रियाओं से बनते हैं।

महासागरीय अधस्तल का विभाजन

महासागरीय अधस्तल को चार प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है- (i) महाद्वीपीय शेल्फ़ (ii) महाद्वीपीय ढाल (iii) गहरे समुद्री मैदान तथा (iv) महासागरीय गभीर। इस विभाजन के अतिरिक्त महासागरीय तली पर कुछ बड़े तथा छोटे उच्चावच संबंधी लक्षण पाए जाते हैं, जैसे- कटकें, पहाड़ियाँ, समुद्री टीला, निमग्न द्वीप, खाइयाँ व खड्ड आदि।

महाद्वीपीय शेल्फ़

महाद्वीपीय शेल्फ़, प्रत्येक महाद्वीप का विस्तृत सीमांत होता है, जो अपेक्षाकृत उथले समुद्रों तथा खाड़ियों से घिरा होता है। यह महासागर का सबसे उथला भाग होता है, जिसकी औसत प्रवणता 1 डिग्री या उससे भी कम होती है। यह शेल्फ़ अत्यंत तीव्र ढाल पर समाप्त होता है

जिसे शेल्फ़ अवकाश कहा जाता है।

महाद्वीपीय शेल्फ़ों की चौड़ाई एक महासागर से दूसरे महासागर में भिन्न होती है। महाद्वीपीय शेल्फ़ों की औसत चौड़ाई 80 किलोमीटर होती है। कुछ सीमांतों के साथ शेल्फ़ नहीं होते अथवा अत्यंत संकीर्ण होते हैं जैसे कि चिली के तट तथा सुमात्रा के पश्चिमी तट इत्यादि पर। इसके विपरीत आकर्टिक महासागर में साइबेरियन शेल्फ़ विश्व में सबसे बड़ा है जिसकी चौड़ाई 1,500 किलोमीटर है। शेल्फ़ की गहराई भी भिन्न भिन्न होती है। कुछ क्षेत्रों में यह 30 मीटर और कुछ क्षेत्रों में 600 मीटर गहरी होती है।

महाद्वीपीय शेल्फ़ों पर अवसादों की मोटाई भी अलग-अलग होती है। ये अवसाद भूमि से नदियों, हिमनदियों तथा पवन द्वारा लाए जाते हैं और तरंगों तथा धाराओं द्वारा वितरित किए जाते हैं। महाद्वीपीय शेल्फ़ों पर लंबे समय तक प्राप्त स्थूल तलछटी अवसाद जीवाश्मी ईंधनों के स्रोत बनते हैं।

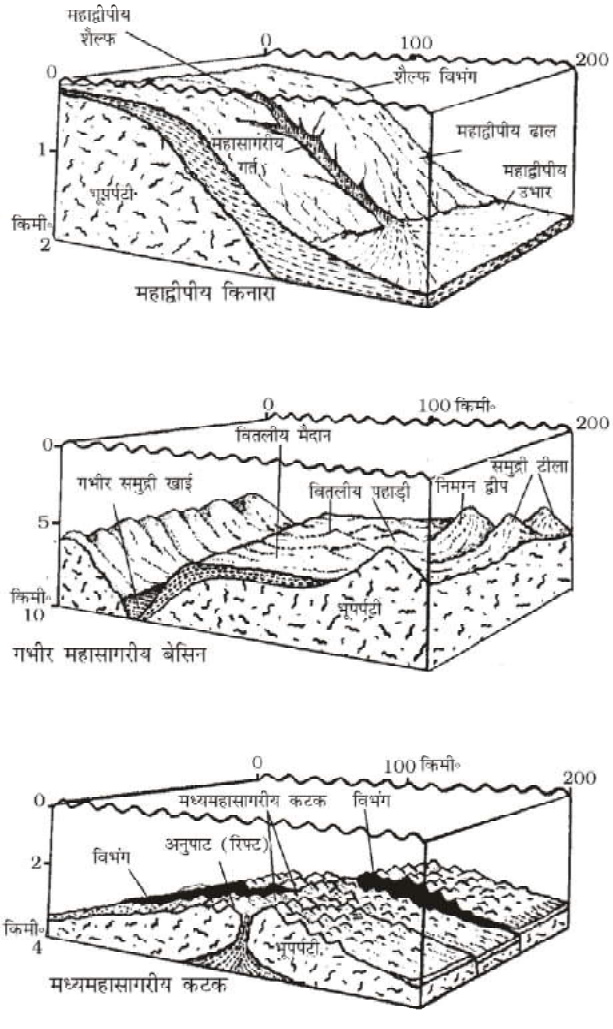

चित्र 13.2 : महासागरीय अधस्तल के उच्चावच

महाद्वीपीय ढाल

महाद्वीपीय ढाल महासागरीय बेसिनों और महाद्वीपीय शेल्फ़ को जोड़ती है। इसकी शुरुआत वहाँ होती है, जहाँ महाद्वीपीय शेल्फ़ की तली तीव्र ढाल में परिवर्तित हो जाती है। ढाल वाले प्रदेश की प्रवणता 2 से 5 डिग्री के बीच होती है। ढाल वाले प्रदेश की गहराई 200 मीटर एवं 3,000 मीटर के बीच होती है। ढाल का किनारा महाद्वीपों के समाप्ति को इंगित करता है। इसी प्रदेश में कैनियन (गभीर खड्ड) एवं खाइयाँ दिखाई देते हैं।

गभीर सागरीय मैदान

गभीर सागरीय मैदान महासागरीय बेसिनों के मंद ढाल वाले क्षेत्र होते हैं। ये विश्व के सबसे चिकने तथा सबसे सपाट भाग हैं। इनकी गहराई 3,000 से 6,000 मीटर के बीच होती है। ये मैदान महीन कणों वाले अवसादों जैसे मृत्तिका एवं गाद से ढके होते हैं।

महासागरीय गर्त

ये महासागरों के सबसे गहरे भाग होते हैं। ये गर्त अपेक्षाकृत खड़े किनारों वाले संकीर्ण बेसिन होते हैं। अपने चारों ओर की महासागरीय तली की अपेक्षा ये 3 से 5 किमी॰ तक गहरे होते हैं। ये महाद्वीपीय ढाल के आधार तथा द्वीपीय चापों के पास स्थित होते हैं एवं सक्रिय ज्वालामुखी तथा प्रबल भूकंप वाले क्षेत्रों से संबंधित होते हैं। यही कारण है कि ये प्लेटों के संचलन के अध्ययन के लिए काफ़ी महत्वपूर्ण हैं। अभी तक लगभग 57 गर्तों को खोजा गया है, जिनमें से 32 प्रशांत महासागर में, 19 अटलांटिक महासागर में एवं 6 हिंद महासागर में हैं।

उच्चावच की लघु आकृतियाँ

ऊपर बताए गए महासागरीय अधस्तल के प्रमुख उच्चावचों के अतिरिक्त कुछ लघु किंतु महत्वूपर्ण आकृतियाँ महासागरों के विभिन्न भागों में प्रमुखता से पाई जाती हैं।

मध्य-महासागरीय कटक

एक मध्य-महासागरीय कटक पर्वतों की दो शृंखलाओं से बना होता है, जो एक विशाल अवनमन द्वारा अलग किए गए होते हैं। इन पर्वत शृंखलाओं के शिखर की ऊँचाई 2,500 मीटर तक हो सकती है तथा इनमें से कुछ समुद्र की सतह तक भी पहुँच सकती हैं इसका उदाहरण आईसलैंड है जो मध्य अटलांटिक कटक का एक भाग है।

समुद्री टीला

यह नुकीले शिखरों वाला एक पर्वत है, जो समुद्री तली से ऊपर की ओर उठता है, किंतु महासागरों के सतह तक नहीं पहुँच पाता। समुद्री टीले ज्वालामुखी के द्वारा उत्पन्न होते हैं। ये 3,000 से 4,500 मीटर ऊँचे हो सकते हैं। एम्पेरर समुद्री टीला, जो प्रशांत महासागर में हवाई द्वीपसमूहों का विस्तार है इसका एक अच्छा उदाहरण है।

सबसे सपाट जलमग्न कैनियन

ये गहरी घाटियाँ होती हैं। जिनमें से कुछ की तुलना कोलोरेडो नदी की ग्रैण्ड कैनियन से की जा सकती है। कई बार ये बड़ी नदियों के मुहाने से आगे की ओर विस्तृत होकर महाद्वीपीय शेल्फ़ व ढालों को आर-पार काटती नज़र आती है। हडसन कैनियन विश्व का सबसे अधिक जाना माना कैनियन है।

निमग्न द्वीप

यह चपटे शिखर वाले समुद्री टीले है। इन चपटे शिखर वाले जलमग्न पर्वतों के बनने की अवस्थाएँ क्रमिक अवतलन के साक्ष्यों द्वारा प्रदर्शित होती हैं। अकेले प्रशांत महासागर में अनुमानत: 10,000 से अधिक समुद्री टीले एवं निमग्न द्वीप उपस्थित हैं।

प्रवाल द्वीप

ये उष्ण कटिबंधीय महासागरों में पाए जाने वाले प्रवाल भित्तियों से युक्त निम्न आकार के द्वीप हैं जो कि गहरे अवनमन को चारों ओर से घेरे हुए होते हैं। यह समुद्र (अनूप) का एक भाग हो सकता है या कभी-कभी ये साफ, खारे या बहुत अधिक जल को चारों तरफ़ से घिरे रहते हैं।

महासागरीय जल का तापमान

इस खंड में विभिन्न महासागरों में तापमान की स्थानिक एवं ऊर्ध्वाधर भिन्नताओं के बारे में बताया गया है। महासागरीय जल भूमि की तरह सौर ऊर्जा के द्वारा गर्म होते हैं। स्थल की तुलना में जल के तापन व शीतलन की प्रक्रिया धीमी होती है।

तापमान वितरण को प्रभावित करने वाले कारक

महासागरीय जल के तापमान वितरण को प्रभावित करने वाले कारक हैं-

(i) अक्षांश - ध्रुवों की ओर प्रवेशी सौर्य विकिरण की मात्रा घटने के कारण महासागरों के सतही जल का तापमान विषुवत् वृत्त से ध्रुवों की ओर घटता चला जाता है।

(ii) स्थल एवं जल का असमान वितरण - उत्तरी गोलार्ध के महासागर दक्षिणी गोलार्ध के महासागरों की अपेक्षा स्थल के बहुत बड़े भाग से जुड़े होने के कारण अधिक मात्रा में ऊष्मा प्राप्त करते हैं।

(iii) सनातन पवनें - स्थल से महासागरों की तरफ बहने वाली पवनें महासागरों के सतही गर्म जल को तट से दूर धकेल देती हैं, जिसके परिणामस्वरूप नीचे का ठंडा जल ऊपर की ओर आ जाता है। परिणामस्वरूप, तापमान में देशांतरीय अंतर आता है। इसके विपरीत, अभितटीय पवनें गर्म जल को तट पर जमा कर देती हैं और इससे तापमान बढ़ जाता है,

(iv) महासागरीय धाराएँ - गर्म महासागरीय धाराएँ ठंडे क्षेत्रों में तापमान को बढ़ा देती हैं, जबकि ठंडी धाराएँ गर्म महासागरीय क्षेत्रों में तापमान को घटा देती हैं। गल्फ स्ट्रीम (गर्म धारा) उत्तर अमरीका के पूर्वी तट तथा यूरोप के पश्चिमी तट के तापमान को बढ़ा देती है, जबकि लेब्रेडोर धारा (ठंडी धारा) उत्तर अमरीका के उत्तर-पूर्वी तट के नज़दीक के तापमान को कम कर देती हैं।

ये सभी कारक महासागरीय धाराओं के तापमान को स्थानिक रूप से प्रभावित करते हैं। निम्न अक्षांशों में स्थित परिवेष्ठित समुद्रों का तापमान खुले समुद्रों की अपेक्षा अधिक होता है, जबकि उच्च अक्षांशों में स्थित परिवेष्ठित समुद्रों का तापमान खुले समुद्रों की अपेक्षा कम होता है।

तापमान का ऊर्ध्वाधर तथा क्षैतिज वितरण

महासागरीय जल की तापीय-गहराई का पार्श्वचित्र यह दिखाता है कि बढ़ती हुई गहराई के साथ तापमान कैसे घटता है। पार्श्वचित्र महासागर के सतही जल एवं गहरी परतों के बीच सीमा क्षेत्र को दर्शाता है। यह सीमा समुद्री

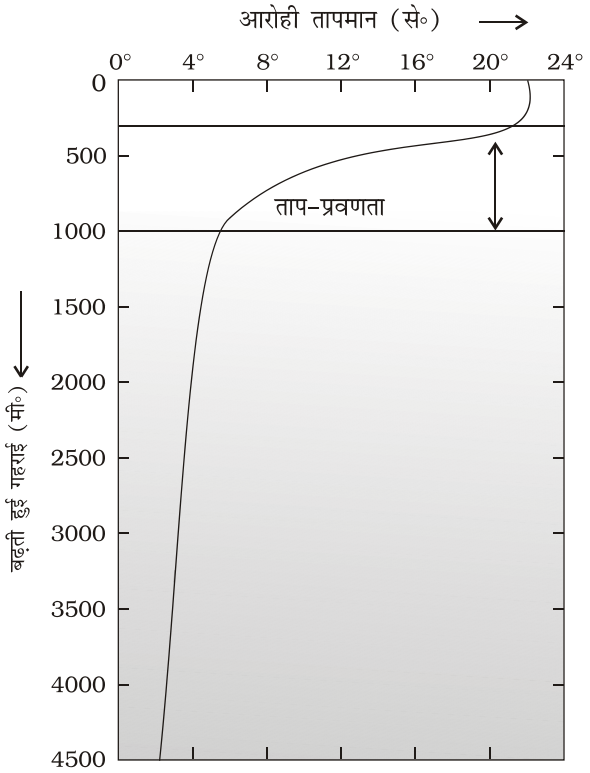

चित्र 13.3 : ताप प्रवणता (थर्मोक्लाईन)

सतह से लगभग 100 से 400 मीटर नीचे प्रारंभ होती है एवं कई सौ मीटर नीचे तक जाती है (चित्र 13.3)। वह सीमा क्षेत्र जहाँ तापमान में तीव्र गिरावट आती है, ताप प्रवणता (थर्मोक्लाईन) कहा जाता है। जल के कुल आयतन का लगभग 90 प्रतिशत गहरे महासागर में ताप प्रवणता (थर्मोक्लाईन) के नीचे पाया जाता है। इस क्षेत्र में तापमान 0 डिग्री सेल्सियस पहुँच जाता है।

मध्य एवं निम्न अक्षांशों में महासागरों के तापमान की संरचना को सतह से तली की ओर तीन परतों वाली प्रणाली के रूप में समझाया जा सकता है।

पहली परत गर्म महासागरीय जल की सबसे ऊपरी परत होती है जो लगभग 500 मीटर मोटी होती है और इसका तापमान 20 डिग्री से॰ से 25 डिग्री से॰ के बीच होता है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में, यह परत पूरे वर्ष उपस्थित होती है, जबकि मध्य अक्षांशों में यह केवल ग्रीष्म ऋतु में विकसित होती है। दूसरी परत जिसे ताप प्रवणता (थर्मोक्लाईन) परत कहा जाता है, पहली परत के नीचे स्थित होती है। इसमें गहराई के बढ़ने के साथ तापमान में तीव्र गिरावट आती है। यहाँ थर्मोक्लाईन की मोटाई 500 से 1,000 मीटर तक होती है।

तीसरी परत बहुत अधिक ठंडी होती है तथा गभीर महासागरीय तली तक विस्तृत होती है। आर्कटिक एवं अंटार्कटिक वृत्तों में, सतही जल का तापमान 0 डिग्री से॰ के निकट होता है, और इसलिए गहराई के साथ तापमान में बहुत कम परिवर्तन होता है। यहाँ ठंडे पानी की केवल एक ही परत पाई जाती है जो सतह से गभीर महासागरीय तली तक विस्तृत होती है।

महासागरों की सतह के जल का औसत तापमान लगभग 27 डिग्री से॰ होता है, और यह विषवत् वृत्त से ध्रुवों की ओर क्रमिक ढंग से कम होता जाता है। बढ़ते हुए अक्षांशों के साथ तापमान के घटने की दर सामान्यत: प्रति अक्षांश 0.5 डिग्री से॰ होती है। औसत तापमान 20 डिग्री अक्षांश पर लगभग 22 डिग्री से॰, 40 डिग्री अक्षांश पर 14 डिग्री से॰ तथा ध्रुवों के नज़दीक 0 डिग्री से॰ होता है। उत्तरी गोलार्ध के महासागरों का तापमान दक्षिणी गोलार्ध की अपेक्षा अधिक होता है। उच्चतम तापमान विषवत् वृत्त पर नहीं बल्कि, इससे कुछ उत्तर की तरफ़ दर्ज किया जाता है। उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्ध का औसत वार्षिक तापमान क्रमश: 19 डिग्री से॰ तथा 16 डिग्री से॰ के आस-पास होता है। यह भिन्नता उत्तरी एवं दक्षिणी गोलार्धों में स्थल एवं जल के असमान वितरण के कारण होती है। चित्र 13.4 में महासागरीय सतह के तापमान के स्थानिक प्रारूप को दिखाया गया है।

यह तथ्य भली भांति जाना जाता है कि महासागरों का उच्चतम तापमान सदैव उनकी ऊपरी सतहों पर होता है, क्योंकि वे सूर्य की ऊष्मा को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करते हैं और यह ऊष्मा महासागरों के निचले भागों में संवहन की प्रक्रिया से पारेषित होती है। परिणामस्वरूप गहराई के साथ-साथ तापमान में कमी आने लगती है, लेकिन तापमान के घटने की यह दर सभी जगह समान नहीं होती। 200 मीटर की गहराई तक तापमान बहुत तीव्र गति से गिरता है तथा उसके बाद तापमान के घटने की दर कम होती जाती है।

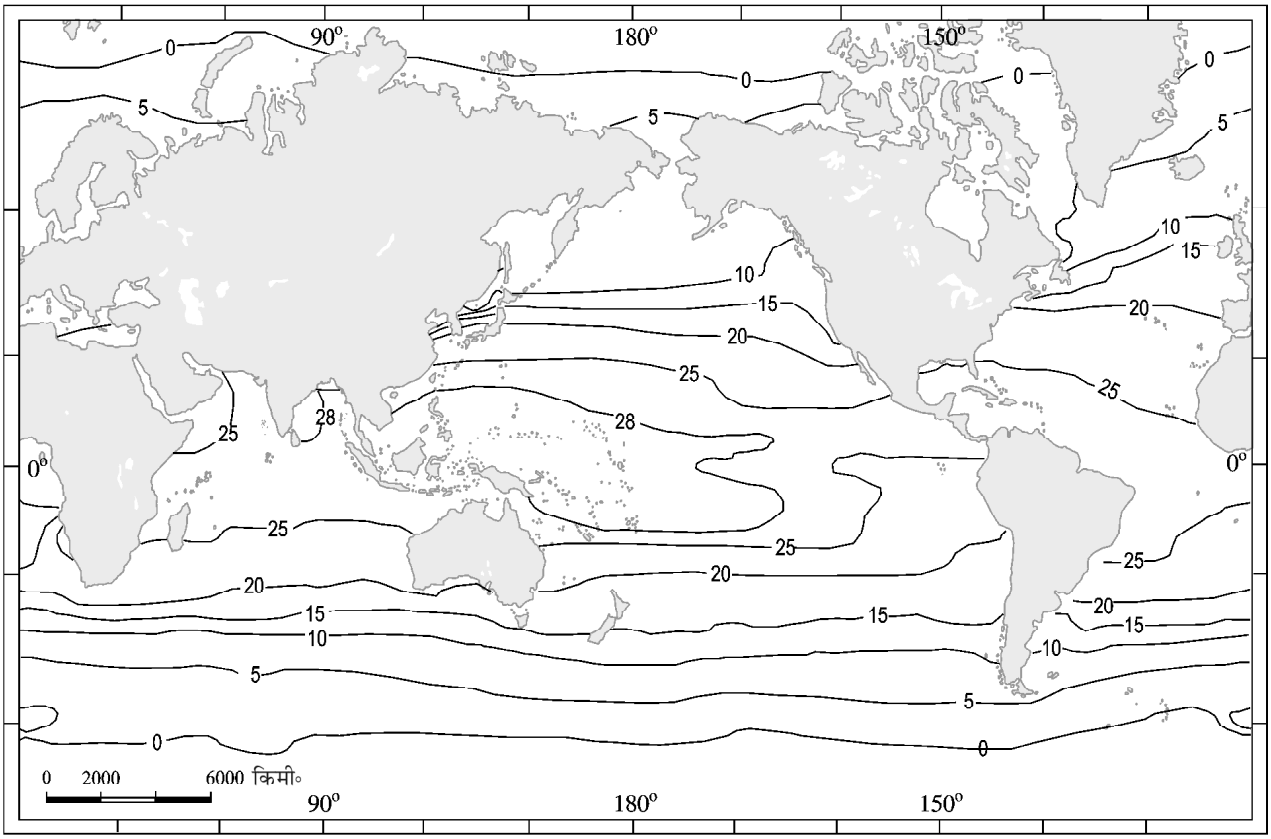

चित्र 13.4 : महासागरों की सतह के तापमान (से॰) का स्थानिक प्रतिरूप

महासागरीय जल की लवणता

चाहे वर्षा का जल हो या महासागरों का, प्रकृति में उपस्थित सभी जलों में खनिज लवण घुले हुए होते हैं। लवणता वह शब्द है जिसका उपयोग समुद्री जल में घुले हुए नमक की मात्रा को निर्धारित करने में किया जाता है (सारणी 13.4)। इसका परिकलन 1,000 ग्राम॰ (एक किलोग्राम) समुद्री जल में घुले हुए नमक (ग्राम में) की मात्रा के द्वारा किया जाता है। इसे प्राय: प्रति 1,000 भाग (‰) या PPT के रूप में व्यक्त किया जाता है। लवणता समुद्री जल का महत्वपूर्ण गुण है। 24.7‰ की लवणता को खारे जल को सीमांकित करने का उच्च सीमा माना गया है।

सारणी 13.4 समुद्री जल में घुले हुए नमक
(प्रति किलोग्राम जल में नमक का ग्राम)

क्लोरीन	18.97
सोडियम	10.47
सल्फेट	2.65
मैग्नेशियम	1.28
कैल्शियम	0.41
पोटैशियम	0.38
बाईकार्बोनेट	0.14
ब्रोमीन	0.06
बोरेट	0.02
स्ट्रांटियम	0.01

महासागरीय लवणता को प्रभावित करने वाले कारक

(i) महासागरों की सतह के जल की लवणता मुख्यत: वाष्पीकरण एवं वर्षण पर निर्भर करती है। (ii) तटीय क्षेत्रों में सतह के जल की लवणता नदियों के द्वारा लाए गए ताज़े जल के द्वारा तथा ध्रुवीय क्षेत्रों में बर्फ के जमने एवं पिघलने की क्रिया से सबसे अधिक प्रभावित होती है। (iii) पवन भी जल को एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में स्थानांतरित करके लवणता को प्रभावित करती है। (iv) महासागरीय धाराएँ भी लवणता में भिन्नता उत्पन्न करने में सहयोग करती हैं। जल की लवणता, तापमान एवं

घनत्व परस्पर संबंधित होते हैं। इसलिए, तापमान अथवा घनत्व में किसी भी प्रकार का परिवर्तन किसी क्षेत्र की लवणता को प्रभावित करता है।

उच्चतम लवणता वाले क्षेत्र
(i) मृत सागर में (238‰)
(ii) टर्की की वॉन झील (330‰)
(iii) ग्रेट साल्ट झील (220‰)

लवणता का क्षैतिज वितरण

सामान्य खुले महासागर की लवणता 33‰ से 37‰ के बीच होती है। चारों तरफ़ स्थल से घिरे लाल सागर में यह 41‰ तक होती हैं, जबकि आर्कटिक एवं ज्वार नद मुख में मौसम के अनुसार लवणता 0 से 35‰ के बीच पाई जाती है। गर्म तथा शुष्क क्षेत्रों में, जहाँ वाष्पीकरण उच्च होता है कभी-कभी वहाँ की लवणता 70‰ तक पहुँच जाती है।

प्रशांत महासागर के लवणता में भिन्नता मुख्यत: इसके आकार एवं बहुत अधिक क्षेत्रीय विस्तार के कारण है। उत्तरी गोलार्ध के पश्चिमी भागों में लवणता 35‰ में से कम होकर 31‰ हो जाती है, क्योंकि आर्कटिक क्षेत्र का पिघला हुआ जल वहाँ पहुँचता है। इसी प्रकार 15° से 20° दक्षिण के बाद यह तक 33‰ तक घट जाती है।

अटलांटिक महासागर की औसत लवणता 36‰ के लगभग है। उच्चतम लवणता 15° से 20° अक्षांश के बीच दर्ज की गई है। अधिकतम लवणता 20°N एवं 30°N तथा 20°W से 60°W के बीच पाई जाती है। यह उत्तर की ओर क्रमिक रूप से घटती जाती है।

उच्च अक्षांश में स्थित होने के बावजूद उत्तरी सागर में उत्तरी अटलांटिक प्रवाह के द्वारा लाए गए अधिक लवणीय जल के कारण अधिक लवणता पाई जाती है। बाल्टिक समुद्र की लवणता कम होती है, क्योंकि इसमें बहुत अधिक मात्रा में नदियों का पानी प्रवेश करता है। भूमध्यसागर की लवणता उच्च वाष्पीकरण के कारण अधिक होती है। काले सागर की लवणता नदियों के द्वारा अधिक मात्रा में लाए जाने वाले ताज़े जल के कारण कम होती है।

हिंद महासागर की औसत लवणता 35‰ है। बंगाल की खाड़ी में गंगा नदी के जल के मिलने से लवणता

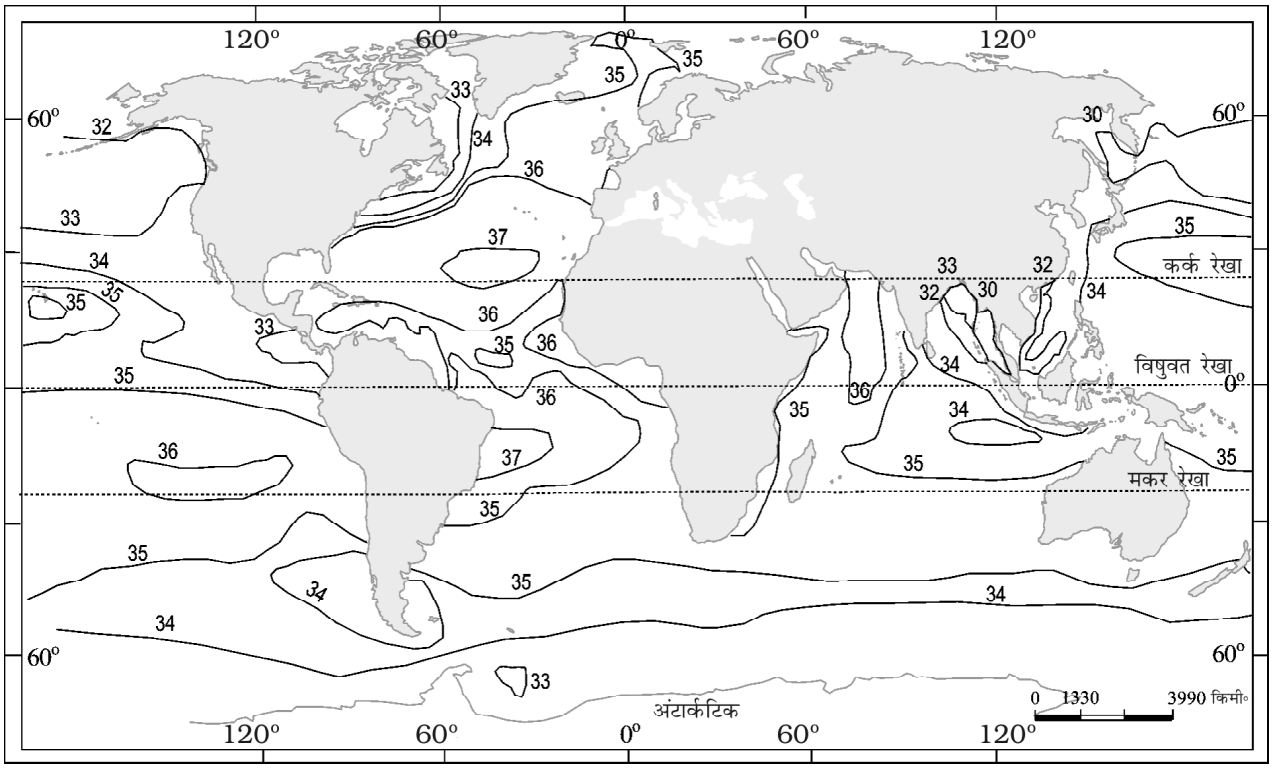

चित्र 13.5 : महासागरों में सतही लवणता का वितरण

की प्रवृत्ति कम पाई जाती है। इसके विपरीत, अरब सागर की लवणता उच्च वाष्पीकरण एवं ताज़े जल की कम प्राप्ति के कारण अधिक है। चित्र 13.5 विश्व के महासागरों की लवणता को दर्शाता है।

लवणता का ऊर्ध्वाधर वितरण

गहराई के साथ लवणता में परिवर्तन आता है, लेकिन इसमें परिवर्तन समुद्र की स्थिति पर निर्भर करता है। सतह की लवणता जल के बर्फ या वाष्प के रूप में परिवर्तित हो जाने के कारण बढ़ जाती है या ताज़े जल के मिल जाने से घटती है, जैसा कि नदियों के द्वारा होता है। गहराई में लवणता लगभग नियत होती है, क्योंकि वहाँ किसी प्रकार से पानी का 'ह्रास' या नमक की मात्रा में 'वृद्धि' नहीं होती। महासागरों के सतही क्षेत्रों एवं गहरे क्षेत्रों के बीच लवणता में अंतर स्पष्ट होता है। कम लवणता वाला जल उच्च लवणता व घनत्व वाले जल के ऊपर स्थित होता है। लवणता साधारणत: गहराई के साथ बढ़ती है तथा एक स्पष्ट क्षेत्र, जिसे हैलोक्लाईन कहा जाता है, में यह तीव्रता से बढ़ती है। लवणता समुद्री जल के घनत्व को प्रभावित करती है तथा महासागरीय जल के स्तरीकरण को प्रभावित करता है। यदि अन्य कारक स्थिर रहें तो समुद्री जल की बढ़ती लवणता उसके घनत्व को बढ़ाती है। उच्च लवणता वाला समुद्री जल, प्राय: कम लवणता वाले जल के नीचे बैठ जाता है। इससे लवणता का स्तरीकरण हो जाता है।

अभ्यास

1. बहुवैकल्पिक प्रश्न :

(i) उस तत्त्व की पहचान करें जो जलीय चक्र का भाग नहीं है।
(क) वाष्पीकरण (ख) वर्षण
(ग) जलयोजन (घ) संघनन

(ii) महाद्वीपीय ढाल की औसत गहराई निम्नलिखित के बीच होती है।
(क) 2–20 मीटर (ख) 20–200 मीटर
(ग) 200–2,000 मीटर (घ) 2,000–20,000 मीटर

(iii) निम्नलिखित में से कौन सी लघु उच्चावच आकृति महासागरों में नहीं पाई जाती है?
(क) समुद्री टीला (ख) महासागरीय गभीर
(ग) प्रवाल द्वीप (घ) निमग्न द्वीप

(v) लवणता को प्रति समुद्री जल में घुले हुए नमक (ग्राम) की मात्रा से व्यक्त किया जाता है–
(क) 10 ग्राम (ख) 100 ग्राम
(ग) 1,000 ग्राम (घ) 10,000 ग्राम

(iv) निम्न में से कौन सा सबसे छोटा महासागर है?
(क) हिंद महासागर (ख) अटलांटिक महासागर
(ग) आर्कटिक महासागर (घ) प्रशांत महासागर

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए :

(i) हम पृथ्वी को नीला ग्रह क्यों कहते हैं?
(ii) महाद्वीपीय सीमांत क्या होता है?
(iii) विभिन्न महासागरों के सबसे गहरे गर्तों की सूची बनाइये।
(iv) तापप्रवणता क्या है?

(v) समुद्र में नीचे जाने पर आप ताप की किन परतों का सामना करेंगे? गहराई के साथ तापमान में भिन्नता क्यों आती है?

(vi) समुद्री जल की लवणता क्या है?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दीजिए :

(i) जलीय चक्र के विभिन्न तत्व किस प्रकार अंतर-संबंधित हैं?

(ii) महासागरों के तापमान वितरण को प्रभावित करने वाले कारकों का परीक्षण कीजिए।

परियोजना कार्य

(i) विश्व की एटलस की सहायता से महासागरीय नितल के उच्चावचों को विश्व के मानचित्र पर दर्शाइए।

(ii) एटलस की सहायता से हिंद महासागर में मध्य महासागरीय कटकों के क्षेत्रों को पहचानिए।

अध्याय

14

महासागरीय जल संचलन

महासागरीय जल स्थिर न होकर गतिमान है। इसकी भौतिक विशेषताएँ (जैसे- तापमान, खारापन, घनत्व) तथा बाह्य बल (जैसे- सूर्य, चंद्रमा तथा वायु) अपने प्रभाव से महासागरीय जल को गति प्रदान करते हैं। महासागरीय जल में क्षैतिज व ऊर्ध्वाधर दोनों प्रकार की गतियाँ होती हैं। महासागरीय धाराएँ व लहरें क्षैतिज गति से संबंधित हैं। ज्वारभाटा ऊर्ध्वाधर गति से संबंधित है। महासागरीय धाराएँ एक निश्चित दिशा में बहुत बड़ी मात्रा में जल का लगातार बहाव है। जबकि, तरंगें जल की क्षैतिज गति हैं। धाराओं में जल एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचता है, जबकि तरंगों में जल गति नहीं करता है। लेकिन, तरंग के आगे बढ़ने का क्रम जारी रहता है। ऊर्ध्वाधर गति महासागरों एवं समुद्रों में जल के ऊपर उठने तथा नीचे गिरने से संबंधित है। सूर्य एवं चंद्रमा के आकर्षण के कारण, महासागरीय जल एक दिन में दो बार ऊपर उठते एवं नीचे गिरते हैं। अध:स्तल से ठंडे जल का उत्प्रवाह एवं अवप्रवाह महासागरीय जल के ऊर्ध्वाधर गति के प्रकार हैं।

तरंगें

तरंगें वास्तव में ऊर्जा हैं, जल नहीं, जो कि महासागरीय सतह के आर-पार गति करते हैं। तरंगों में जल कण छोटे वृत्ताकार रूप में गति करते हैं। वायु जल को ऊर्जा प्रदान करती हैं, जिससे तरंगें उत्पन्न होती हैं। वायु के कारण तरंगें महासागर में गति करती हैं तथा ऊर्जा तटरेखा पर निर्मुक्त होती है। सतह जल की गति महासागरों के गहरे तल के स्थिर जल को कदाचित् ही प्रभावित करती है। जैसे ही एक तरंग महासागरीय तट पर पहुँचती है इसकी गति कम हो जाती है। ऐसा गत्यात्मक जल के मध्य आपस में घर्षण होने के कारण होता है तथा जब जल की गहराई तरंग के तरंगदैर्ध्य के आधे से कम होती है तब तरंग टूट जाते हैं। बड़ी तरंगें खुले महासागरों में पायी जाती हैं। तरंगें जैसे ही आगे की ओर बढ़ती हैं बड़ी होती जाती हैं तथा वायु से ऊर्जा को अवशोषित करती हैं। अधिकतर तरंगें वायु के जल की विपरीत दिशा में गति से उत्पन्न होती हैं। जब दो नॉट या उससे कम वाली समीर शांत जल पर बहती है, तब छोटी-छोटी उर्मिकाएँ (Ripples) बनती हैं तथा वायु की गति बढ़ने के साथ ही इनका आकार बढ़ता जाता है, जब तक इनके टूटने से सफेद बुलबुले नहीं बन जाते। तट के पास पहुँचने, टूटने तथा सफेद बुलबलों में सर्फ की भाँति घुलने से पहले तरंगें हजारों कि॰मी॰ की यात्रा करती हैं।

एक तरंग का आकार एवं आकृति उसकी उत्पत्ति को दर्शाता है। युवा तरंगें अपेक्षाकृत ढाल वाली होती हैं तथा संभवत: स्थानीय वायु के कारण बनी होती हैं। कम एवं नियमित गति वाली तरंगों की उत्पत्ति दूरस्थ स्थानों पर होती है, संभवत: दूसरे गोलार्ध में। तरंग के उच्चतम बिंदु का पता वायु की तीव्रता के द्वारा लगाया जाता है, यानि यह कितने समय तक प्रभावी है तथा उस क्षेत्र के

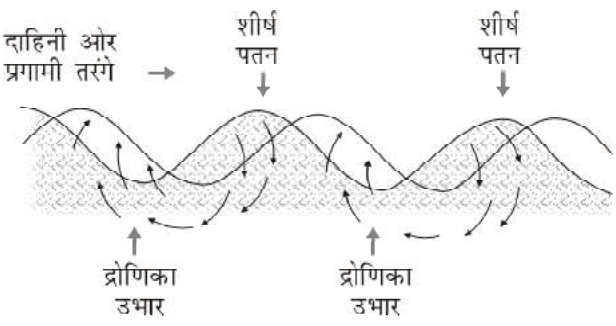

चित्र 14.1 : तरंगों की गति एवं जलीय-अणु

ऊपर कितने समय से एक ही दिशा में प्रवाहमान है?

तरंगें गति करती हैं, क्योंकि वायु जल को प्रवाहित करती है जबकि गुरुत्वाकर्षण बल तरंगों के शिखरों को नीचे की ओर खींचता है। गिरता हुआ जल पहले वाले गर्त को ऊपर की ओर धकेलता है एवं तरंग नये स्थिति में गति करती हैं। तरंगों के नीचे जल की गति वृत्ताकार होती है। यह इंगित करता है कि आती हुई तरंग पर वस्तुओं का वहन आगे तथा ऊपर की ओर होता है एवं लौटती हुई तरंग पर नीचे तथा पीछे की ओर।

तरंगों की विशेषताएँ

तरंग शिखर एवं गर्त (Wave crest and trough)

एक तरंग के उच्चतम एवं निम्नतम बिंदुओं को क्रमशः शिखर एवं गर्त कहा जाता है।

तरंग की ऊंचाई (Wave height)

यह एक तरंग के गर्त के अधःस्थल से शिखर के ऊपरी भाग तक की ऊर्ध्वाधर दूरी है।

तरंग आयाम (Amplitude)

यह तरंग की ऊँचाई का आधा होता है।

तरंग काल (Wave period)

तरंग काल एक निश्चित बिंदु से गुजरने वाले दो लगातार तरंग शिखरों या गर्तों के बीच का समयान्तराल है।

तरंगदैर्ध्य (Wavelength)

यह दो लगातार शिखरों या गर्तों के बीच की क्षैतिज दूरी है।

तरंग गति (Wave speed)

जल के माध्यम से तरंग के गति करने की दर को तरंग गति कहते हैं तथा इसे नॉट में मापा जाता है।

तरंग आवृत्ति

यह एक सेकेंड के समयान्तराल में दिए गए बिंदु से गुजरने वाली तरंगों की संख्या है।

ज्वार-भाटा

चंद्रमा एवं सूर्य के आकर्षण के कारण दिन में एक बार या दो बार समुद्र तल का नियतकालिक उठने या गिरने को ज्वारभाटा कहा जाता है। जलवायु संबंधी प्रभावों (वायु एवं वायुमंडलीय दाब में परिवर्तन) के कारण जल की गति को *महोर्मि* (Surge) कहा जाता है। महोर्मि ज्वारभाटाओं की तरह नियमित नहीं होते। ज्वारभाटाओं का स्थानिक एवं कालिक रूप से अध्ययन बहुत ही जटिल है, क्योंकि इसके आवृत्ति, परिमाण तथा ऊँचाई में बहुत अधिक भिन्नता होती है।

चंद्रमा के गुरुत्वाकर्षण के कारण तथा कुछ हद तक सूर्य के गुरुत्वाकर्षण द्वारा ज्वारभाटाओं की उत्पत्ति होती है। दूसरा कारक, अपकेंद्रीय बल है, जो कि गुरुत्वाकर्षण को संतुलित करता है। गुरुत्वाकर्षण बल तथा अपकेंद्रीय बल दोनों मिलकर पृथ्वी पर दो महत्वपूर्ण ज्वारभाटाओं को उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी है। चंद्रमा की तरफ वाले पृथ्वी के भाग पर, एक ज्वारभाटा उत्पन्न होता है, जब विपरीत भाग पर चंद्रमा का गुरुत्वीय आकर्षण बल उसकी दूरी के कारण कम होता है, तब अपकेंद्रीय बल दूसरी तरफ ज्वार उत्पन्न करता है। (चित्र 14.2)

ज्वार उत्पन्न करने वाले बल, इन दो बलों के बीच के अंतर है; यानि चंद्रमा का गुरुत्वीय आकर्षण तथा अपकेंद्र बल। पृथ्वी के धरातल पर, चंद्रमा के निकट

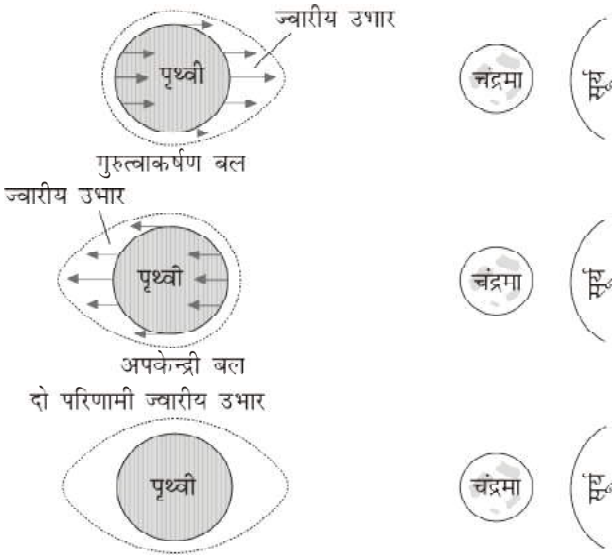

चित्र 14.2 : गुरुत्वाकर्षण बल और ज्वारभाटा के मध्य संबंध

वाले भागों में अपकेंद्रीयकरण बल की अपेक्षा गुरुत्वाकर्षण बल अधिक होता है और इसलिए यह बल चंद्रमा की ओर ज्वारीय उभार का कारण है। चंद्रमा का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के दूसरी तरफ कम होता है, क्योंकि यह भाग चंद्रमा से अधिकतम दूरी पर है तथा यहाँ अपकेंद्रीय बल प्रभावशाली होता है। अत: यह चंद्रमा से दूर दूसरा उभार पैदा करता है। पृथ्वी के धरातल पर, क्षैतिज ज्वार उत्पन्न करने वाले बल ऊर्ध्वाधर बलों से अधिक महत्वपूर्ण हैं जिनसे ज्वारीय उभार पैदा होते हैं।

कनाडा में फंडी खाड़ी के ज्वारभाटा

विश्व का सबसे ऊँचा ज्वारभाटा कनाडा के नवास्कोशिया में स्थित फंडी की खाड़ी में आता है। ज्वारीय उभार की ऊँचाई 15 से 16 मीटर के बीच होती है क्योंकि वहाँ पर दो उच्च ज्वार एवं दो निम्न ज्वार प्रतिदिन आते हैं (लगभग 24 घंटे का समय), अत: एक ज्वार 6 घंटे के भीतर जरूर आता है। अनुमानत: ज्वारीय उभार एक घंटे में लगभग 2.4 मीटर ऊपर उठता है। इसका मतलब यह हुआ कि ज्वार प्रति मिनट 4 से॰मी॰ ज्यादा ऊपर की ओर उठता है। अगर आप समुद्री बीच पर टहलते हुए समुद्री भृगु के किनारे पहुँचे (जो प्राय: वहाँ होते हैं), आप ज्वार देखना न भूलें। अगर आप एक घंटे तक वहाँ हैं, तब आप पाएँगे जहाँ से आपने शुरू किया था, वहाँ पहुँचने के पहले ही पानी आपके सिर के ऊपर होगा।

जहाँ महाद्वीपीय मग्नतट अपेक्षाकृत विस्तृत हैं, वहाँ ज्वारीय उभार अधिक ऊँचाई वाले होते हैं। जब ये ज्वारीय उभार मध्य महासागरीय द्वीपों से टकराते हैं, तो इनकी ऊँचाई में अन्तर आ जाता है। तटों के पास ज्वारनद व खाड़ियों की आकृतियाँ भी ज्वारभाटाओं के तीव्रता को प्रभावित करते हैं। शंक्वाकार खाड़ी ज्वार के परिमाण को आश्चर्यजनक तरीके से बदल देता है। जब ज्वारभाटा द्वीपों के बीच से या खाड़ियों तथा ज्वारनद मुखों में से गुज़रता है, तो उन्हें ज्वारीय धारा कहते हैं।

ज्वारभाटा के प्रकार

ज्वार की आवृत्ति, दिशा एवं गति में स्थानीय व सामयिक भिन्नता पाई जाती है। ज्वारभाटाओं को उनकी बारंबारता एक दिन में या 24 घंटे में या उनकी ऊँचाई के आधार पर विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

आवृत्ति पर आधारित ज्वार-भाटा : (Tides based on frequency)

अर्ध-दैनिक ज्वार (Semi-diurnal) : यह सबसे सामान्य ज्वारीय प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत प्रत्येक दिन दो उच्च एवं दो निम्न ज्वार आते हैं। दो लगातार उच्च एवं निम्न ज्वार लगभग समान ऊँचाई की होती हैं।

दैनिक ज्वार (Diurnal tide) : इसमें प्रतिदिन केवल एक उच्च एवं एक निम्न ज्वार होता है। उच्च एवं निम्न ज्वारों की ऊँचाई समान होती है।

मिश्रित ज्वार (Mixed tide) : ऐसे ज्वार-भाटा जिनकी ऊँचाई में भिन्नता होती है, उसे मिश्रित ज्वार-भाटा कहा जाता है। ये ज्वार-भाटा सामान्यत: उत्तर अमरीका के पश्चिमी तट एवं प्रशांत महासागर के बहुत से द्वीप समूहों पर उत्पन्न होते हैं।

सूर्य, चंद्रमा एवं पृथ्वी की स्थिति पर आधारित ज्वारभाटा (Spring tides) : उच्च ज्वार की ऊँचाई में भिन्नता पृथ्वी के सापेक्ष सूर्य एवं चंद्रमा के स्थिति पर निर्भर करती है। वृहत् ज्वार एवं निम्न ज्वार इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं।

वृहत् ज्वार (Spring tides) : पृथ्वी के संदर्भ में सूर्य एवं चंद्रमा की स्थिति ज्वार की ऊँचाई को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। जब तीनों एक सीधी रेखा में होते हैं, तब ज्वारीय उभार अधिकतम होगा। इनको वृहत् ज्वार-भाटा कहा जाता है तथा ऐसा महीने में दो बार होता है-पूर्णिमा के समय तथा दूसरा अमावस्या के समय।

निम्न ज्वार (Neap tides) : सामान्यत: वृहत् ज्वार एवं निम्न ज्वार के बीच सात दिन का अंतर होता है। इस समय चंद्रमा एवं सूर्य एक दूसरे के समकोण पर होते हैं तथा सूर्य एवं चंद्रमा के गुरुत्व बल एक दूसरे के विरूद्ध कार्य करते हैं। चंद्रमा का आकर्षण सूर्य के दोगुने से अधिक होते हुए भी, यह बल सूर्य के गुरुत्वाकर्षण के

समक्ष धूमिल हो जाता है। चंद्रमा का आकर्षण अधिक इसलिए है, क्योंकि वह पृथ्वी के अधिक निकट है।

महीने में एक बार जब चंद्रमा पृथ्वी के सबसे नजदीक होता है (उपभू), असामान्य रूप से उच्च एवं निम्न ज्वार उत्पन्न होता है। इस दौरान ज्वारीय क्रम सामान्य से अधिक होता है। दो सप्ताह के बाद, जब चंद्रमा पृथ्वी से अधिकतम दूरी (अपभू) पर होता है, तब चंद्रमा का गुरुत्वाकर्षण बल सीमित होता है तथा ज्वार-भाटा के क्रम उनकी औसत ऊँचाई से कम होते हैं।

जब पृथ्वी सूर्य के निकटतम होती है, (उपसौर) प्रत्येक साल 3 जनवरी के आस-पास उच्च एवं निम्न ज्वारों के क्रम भी असामान्य रूप से अधिक न्यून होते हैं। जब पृथ्वी सूर्य से सबसे दूर होती है, (अपसौर) प्रत्येक वर्ष 4 जुलाई के आस-पास, ज्वार के क्रम औसत की अपेक्षा बहुत कम होते हैं। उच्च ज्वार व निम्न ज्वार के बीच का समय, जब जलस्तर गिरता है, 'भाटा' (Ebb) कहलाता है। उच्च ज्वार एवं निम्न ज्वार के बीच का समय जब ज्वार ऊपर चढ़ता है, उसे 'बहाव' या 'बाढ़' कहा जाता है।

ज्वार-भाटा का महत्व

चूँकि, पृथ्वी, चंद्रमा व सूर्य की स्थिति ज्वार की उत्पत्ति का कारण है और इनकी स्थिति के सही ज्ञान से ज्वारों का पूर्वानुमान लगाया जा सकता है। यह नौसंचालकों व मछुआरों को उनके कार्य संबंधी योजनाओं में मदद करता है। नौसंचालन में ज्वारीय प्रवाह का अत्यधिक महत्व है। ज्वार की ऊँचाई बहुत अधिक महत्वपूर्ण है, खासकर नदियों के किनारे वाले पोताश्रय पर एवं ज्वारनदमुख के भीतर, जहाँ प्रवेश द्वार पर छिछले रोधिका होते हैं, जो कि नौकाओं एवं जहाजों को पोताश्रय में प्रवेश करने से रोकते हैं। ज्वार-भाटा तलछटों के डीसिल्टेशन (Desiltation) में भी मदद करती है तथा ज्वारनदमुख से प्रदूषित जल को बाहर निकालने में भी। ज्वारों का इस्तेमाल विद्युत शक्ति (कनाडा, फ्रांस, रूस एवं चीन में) उत्पन्न करने में भी किया जाता है। एक 3 मैगावाट शक्ति का विद्युत संयत्र पश्चिम बंगाल में सुंदरवन के दुर्गादुवानी में लगाया जा रहा है।

महासागरीय धाराएँ

महासागरीय धाराएँ महासागरों में नदी प्रवाह के समान है। ये निश्चित मार्ग व दिशा में जल के नियमित प्रवाह को दर्शाते हैं। महासागरीय धाराएँ दो प्रकार के बलों के द्वारा प्रभावित होती हैं, वे हैं- (i) प्राथमिक बल, जो जल की गति को प्रारंभ करता है, तथा (ii) द्वितीयक बल, जो धाराओं के प्रवाह को नियंत्रित करता है।

प्राथमिक बल, जो धाराओं को प्रभावित करते हैं, वे हैं : (i) सौर ऊर्जा से जल का गर्म होना, (ii) वायु, (iii) गुरुत्वाकर्षण तथा (iv) कोरियोलिस बल (Coriolis force)। सौर ऊर्जा से गर्म होकर जल फैलता है। यही कारण है कि विषवत् वृत्त के पास महासागरीय जल का स्तर मध्य अक्षांशों की अपेक्षा 8 से॰मी॰ अधिक ऊँचा होता है। इसके कारण बहुत कम प्रवणता उत्पन्न होती है तथा जल का बहाव ढाल से नीचे की तरफ़ होता है। महासागर के सतह पर बहने वाली वायु जल को गतिमान करती है। इस क्रम में वायु एवं पानी की सतह के बीच उत्पन्न होने वाला घर्षण बल जल की गति को प्रभावित करता है। गुरुत्वाकर्षण के कारण जल नीचे बैठता है और यह एकत्रित जल दाब प्रवणता में भिन्नता लाता है। कोरियालिस बल के कारण उत्तरी गोलार्ध में जल की गति की दिशा के दाहिनी तरफ़ और दक्षिणी गोलार्ध में बायीं ओर प्रवाहित होता है तथा उनके चारों ओर बहाव को वलय (Gyres) कहा जाता है। इनके कारण सभी महासागरीय बेसिनों में वृहत् वृत्ताकार धाराएँ उत्पन्न होती हैं।

पानी के घनत्व में अंतर, महासागरीय जलधाराओं के ऊर्ध्वाधर गति को प्रभावित करता है। अधिक खारा जल निम्न खारे जल की अपेक्षा ज्यादा सघन होता है तथा इसी प्रकार ठंडा जल, गर्म जल की अपेक्षा अधिक सघन होता है। सघन जल नीचे बैठता है, जबकि हल्के जल की प्रवृत्ति उपर उठने की होती है। ठंडे जल वाली महासागरीय धाराएँ तब उत्पन्न होती हैं, जब ध्रुवों के पास वाले जल नीचे बैठते हैं एवं धीरे-धीरे विषुवत् वृत्त की ओर गति करते हैं। गर्म जलधाराएँ विषुवत् वृत्त से सतह के साथ

महासागरीय धाराओं की विशेषताएँ

धाराओं की पहचान उनके प्रवाह से होती है। सामान्यत: धाराएँ सतह के निकट सर्वाधिक शक्तिशाली होती हैं व यहाँ इनकी गति 5 नॉट से अधिक होती है। गहराई में धाराओं की गति धीमी हो जाती है, जो 0.5 नॉट से भी कम होती है। हम किसी धारा की गति को उसके वाह (Drift) के रूप में जानते हैं। वाह को नॉट में मापा जाता है। धारा की शक्ति का संबंध उसकी गति से होता है।

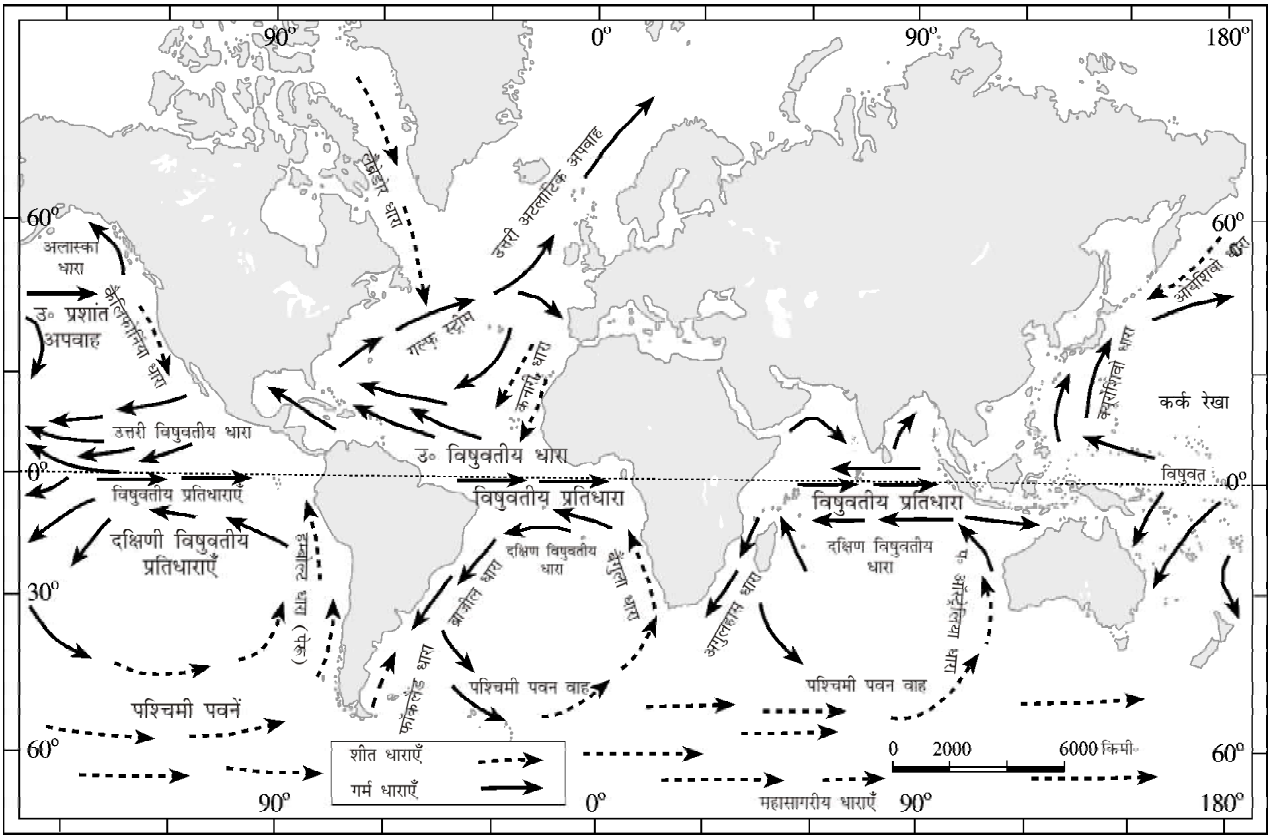

चित्र 14.3 : महासागरों में प्रमुख धाराएँ

होते हुए ध्रुवों की ओर जाती हैं और ठंडे जल का स्थान लेती हैं।

महासागरीय धाराओं के प्रकार

महासागरीय धाराओं को उनकी गहराई के आधार पर ऊपरी या सतही जलधारा (Surface current) व गहरी जलधारा (Deep water currents) में वर्गीकृत किया जा सकता है– (i) ऊपरी जलधारा – महासागरीय जल का 10 प्रतिशत भाग सतही या ऊपरी जलधारा है। यह धाराएँ महासागरों में 400 मी॰ की गहराई तक उपस्थित हैं। (ii) गहरी जलधारा – महासागरीय जल का 90 प्रतिशत भाग गहरी जलधारा के रूप में है। ये जलधाराएँ महासागरों में घनत्व व गुरुत्व की भिन्नता के कारण बहती हैं। उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों में, जहाँ तापमान कम होने के कारण घनत्व अधिक होता है, वहाँ गहरी जलधाराएँ बहती हैं, क्योंकि यहाँ अधिक घनत्व के कारण पानी नीचे की तरफ बैठता है।

महासागरीय धाराओं को तापमान के आधार पर गर्म व ठंडी जलधाराओं में वर्गीकृत किया जाता है। (i) ठंडी जलधाराएँ, ठंडा जल, गर्म जल क्षेत्रों में लाती हैं। ये महाद्वीपों के पश्चिमी तट पर बहती हैं। (ऐसा दोनों गोलार्धों में निम्न व मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों में होता है) और उत्तरी गोलार्ध के उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों में ये जलधाराएँ महाद्वीपों के पूर्वी तट पर बहती हैं। (ii) गर्म जलधाराएँ गर्म जल को ठंडे जल क्षेत्रों में पहुँचाती हैं और प्राय: महाद्वीपों के पूर्वी तटों पर बहती हैं (दोनों गोलार्धों के निम्न व मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों में)। उत्तरी गोलार्ध में, ये जलधाराएँ उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों में महाद्वीपों के पश्चिमी तट पर बहती हैं।

प्रमुख महासागरीय धाराएँ

प्रमुख महासागरीय धाराएँ प्रचलित पवनों और कोरियालिस प्रभाव से अत्यधिक प्रभावित होती हैं। महासागरीय जलधाराओं का प्रवाह वायुमंडीय प्रवाह से मिलता-जुलता है। मध्य अक्षांशीय क्षेत्रों में, महासागरों पर वायु प्रतिचक्रवात के रूप में बहती है। दक्षिणी गोलार्ध में, यह प्रवाह उत्तरी

गोलार्ध की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है। महासागरीय धाराएँ भी लगभग इसी के अनुरूप प्रवाहित होती हैं। उच्च अक्षांशीय क्षेत्रों में, वायु प्रवाह मुख्यत: चक्रवात के रूप में होता है और महासागरीय धाराएँ भी इसी का अनुकरण करती हैं। मानसून प्रधान क्षेत्रों में, मानसून पवनों का प्रवाह जलधाराओं के प्रवाह को प्रभावित करता है। निम्न अक्षांशों से बहने वाली गर्म जलधाराएँ कोरियोलिस प्रभाव के कारण, उत्तरी गोलार्ध में अपने बाईं तरफ़ और दक्षिणी गोलार्ध में अपने दायीं तरफ मुड़ जाती हैं।

महासागरीय जलधाराएँ भी वायुमंडलीय प्रवाह की भाँति गर्म अक्षांशों से ऊष्मा को स्थानांतरित करते हैं। आर्कटिक व अंटार्कटिक क्षेत्रों की ठंडी जलधाराएँ उष्ण कटिबंधीय व विषुवतीय क्षेत्रों की तरफ प्रवाहित होती हैं, जबकि यहाँ की गर्म जलधाराएँ ध्रुवों की तरफ जाती हैं। विभिन्न महासागरों की प्रमुख जलधाराओं को मानचित्र 14.3 में दर्शाया गया है।

प्रशांत, अटलांटिक और हिंद महासागर में बहने वाली धाराओं की सूची बनाइए। प्रचलित पवन धाराओं की गति को किस प्रकार प्रभावित करती है? चित्र 14.3 से कुछ उदाहरण दें।

महासागरीय धाराओं के प्रभाव

महासागरीय धाराएँ मानवीय क्रियाओं को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। उष्ण व उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों में महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर ठंडी जलधाराएँ बहती हैं (विषुवतीय क्षेत्रों को छोड़कर) उनके औसत तापमान अपेक्षाकृत कम होते हैं व साथ ही दैनिक व वार्षिक तापांतर भी कम होता है। यहाँ कोहरा छा जाता है यद्यपि ये क्षेत्र प्राय: शुष्क हैं। मध्य व उच्च अक्षांशों में महाद्वीपों के पश्चिमी तटों पर गर्म जलधाराएँ बहती हैं जिसके कारण वहाँ एक अलग (अनूठी) जलवायु पाई जाती है। इन क्षेत्रों में ग्रीष्मऋतु अपेक्षाकृत कम गर्म और शीतऋतु अपेक्षाकृत मृदु होती है। यहाँ वार्षिक तापान्तर भी कम होता हैं उष्ण व उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में गर्म जलधाराएँ महाद्वीपों के पूर्वी तटों के सामान्तर बहती है। इसी कारण यहाँ जलवायु गर्म व आर्द्र (वर्षा कारक) होती हैं। ये क्षेत्र उपोष्ण कटिबन्ध के प्रतिचक्रवातीय क्षेत्रों के पश्चिमी किनारों पर स्थित हैं। जहाँ गर्म व ठंडी जलधाराएँ मिलती हैं वहाँ ऑक्सीजन की आपूर्ति प्लैंकटन बढ़ोतरी में सहायक होती है जो मछलियों का प्रमुख भोजन है। संसार के प्रमुख मत्स्य क्षेत्र इन्हीं क्षेत्रों (जहाँ गर्म व ठंडी जलधाराएँ मिलती हैं) में पाए जाते हैं।

अभ्यास

1. बहुवैकल्पिक प्रश्न :

(i) महासागरीय जल की ऊपर एवं नीचे गति किससे संबंधित है?
(क) ज्वार (ख) तरंग
(ग) धाराएँ (घ) ऊपर में से कोई नहीं

(ii) वृहत ज्वार आने का क्या कारण है?
(क) सूर्य और चंद्रमा का पृथ्वी पर एक ही दिशा में गुरुत्वाकर्षण बल
(ख) सूर्य और चंद्रमा द्वारा एक दूसरे की विपरीत दिशा से पृथ्वी पर गुरुत्वाकर्षण बल
(ग) तटरेखा का दंतुरित होना
(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(iii) पृथ्वी तथा चंद्रमा की न्यूनतम दूरी कब होती है?
(क) अपसौर (ख) उपसौर
(ग) उपभू (घ) अपभू

(iv) पृथ्वी उपसौर की स्थिति कब होती है?
(क) अक्टूबर (ख) जुलाई
(ग) सितंबर (घ) जनवरी

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए :

(i) तरंगें क्या हैं?

(ii) महासागरीय तरंगें ऊर्जा कहाँ से प्राप्त करती हैं?

(iii) ज्वार-भाटा क्या है?

(iv) ज्वार-भाटा उत्पन्न होने के क्या कारण हैं?

(v) ज्वार-भाटा नौसंचालन से कैसे संबंधित है?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दीजिए :

(i) जल धाराएँ तापमान को कैसे प्रभावित करती हैं? उत्तर पश्चिम यूरोप के तटीय क्षेत्रों के तापमान को ये किस प्रकार प्रभावित करते हैं?

(ii) जल धाराएँ कैसे उत्पन्न होती हैं?

परियोजना कार्य

(i) किसी झील या तालाब के पास जाएँ तथा तरंगों की गति का अवलोकन करें। एक पत्थर फेंकें एवं देखें कि तरंगें कैसे उत्पन्न होती हैं।

(ii) एक ग्लोब या मानचित्र लें, जिसमें महासागरीय धाराएँ दर्शाई गई हैं, यह भी बताएँ कि क्यों कुछ जलधाराएँ गर्म हैं व अन्य ठंडी। इसके साथ ही यह भी बताएँ कि निश्चित स्थानों पर यह क्यों विक्षेपित होती हैं। कारणों का विवेचन करें।

इकाई
VI

पृथ्वी पर जीवन

इस इकाई के विवरण :

जैवमंडल - पादप एवं अन्य जीवों की विशेषताएँ, पारितंत्र; जैव-भू रासायनिक चक्र, पारिस्थितिक संतुलन तथा जैवविविधता एवं संरक्षण।

अध्याय

15

पृथ्वी पर जीवन

इस पुस्तक के विभिन्न अध्यायों से अब तक आप पर्यावरण के तीन मुख्य परिमंडल-स्थलमंडल, जलमंडल व वायुमंडल के विषय में जान चुके हैं। आप जानते हैं कि पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीवधारी, जो मिलकर जैवमंडल (Biosphere) बनाते हैं - ये पर्यावरण के दूसरे मंडलों के साथ पारस्परिक क्रिया करते हैं। जैवमंडल में पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी जीवित घटक शामिल हैं। जैवमंडल सभी पौधों, जंतुओं, प्राणियों (जिसमें पृथ्वी पर रहने वाले सूक्ष्म जीव भी हैं) और उनके चारों तरफ के पर्यावरण के पारस्परिक अंतर्संबंध से बना है। अधिकतर जीव स्थलमंडल पर ही मिलते हैं परंतु कुछ जलमंडल और वायुमंडल में भी रहते हैं। बहुत से ऐसे जीव भी हैं, जो एक मंडल से दूसरे मंडल में स्वतंत्र रूप से विचरण करते हैं।

> पृथ्वी पर जीवन लगभग हर जगह पाया जाता है। जीवधारी विषुवत् वृत्त से ध्रुवों तक, समुद्री तल से हवा में कई किलोमीटर तक, सूखी घाटियों में, बर्फीले जल में, जलमग्न भागों में, व हज़ारों मीटर गहरे धरातल के भौम जल तक में पाए जाते हैं।

जैवमंडल और इसके घटक पर्यावरण के बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। ये तत्त्व अन्य प्राकृतिक घटकों जैसे -भूमि, जल व मिट्टी के साथ पारस्परिक क्रिया करते हैं। ये वायुमंडल के तत्त्वों जैसे -तापमान, वर्षा, आर्द्रता व सूर्य के प्रकाश से भी प्रभावित होते हैं। जैविक घटकों का भूमि, वायु व जल के साथ पारस्परिक आदान-प्रदान जीवों के जीवित रहने, बढ़ने व विकसित होने में सहायक होता है।

पारिस्थितिकी (Ecology)

समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में आप पारिस्थितिकी व पर्यावरण संबंधी समस्याओं के विषय में पढ़ते होंगे। क्या आपने कभी सोचा है कि 'इकोलॉजी' या पारिस्थितिकी क्या है? जैसाकि आप जानते हैं, पर्यावरण- जैविक व अजैविक तत्त्वों के मेल से बना है। यह जानना अत्यंत रोचक है कि संतुलन के लिए विभिन्न जीवधारियों का होना और बने रहना क्यों आवश्यक है? इस संतुलन के बने रहने के लिए भी विविध प्राणियों/जीवधारियों का एक विशेष अनुपात में रहना आवश्यक है, जिससे जैविक व अजैव तत्त्वों में स्वस्थ अंतर्क्रिया जारी रहे।

पारिस्थितिकी प्रमुख रूप से जीवधारियों के जन्म, विकास, वितरण, प्रवृत्ति व उनके प्रतिकूल अवस्थाओं में भी जीवित रहने से संबंधित है। पारिस्थितिकी केवल जीवधारियों और उनके आपस में संबंध का ही अध्ययन नहीं है। किसी विशेष क्षेत्र में किसी विशेष समूह के जीवधारियों का भूमि, जल अथवा वायु (अजैविक तत्त्वों) से ऐसा अर्तसंबंध जिसमें ऊर्जा प्रवाह व पोषण शृंखलाएं स्पष्ट रूप से समायोजित हों, उसे पारितंत्र (Ecological system) कहा जाता है। पारिस्थिति के संदर्भ में आवास (habitat) पर्यावरण के भौतिक व रासायनिक कारकों का योग है। विभिन्न प्रकार के पर्यावरण व विभिन्न परिस्थितियों में भिन्न प्रकार के पारितंत्र पाए जाते हैं, जहाँ अलग-अलग प्रकार के पौधे व जीव-जंतु विकास क्रम द्वारा उस पर्यावरण के अभ्यस्त हो जाते हैं। इस प्रकरण को पारिस्थितिक अनुकूलन (Ecological adaptation) कहते हैं।

इकोलोजी (ecology) शब्द ग्रीक भाषा के दो शब्दों (Oikos) 'ओइकोस' और (logy) 'लोजी' से मिलकर बना है। ओइकोस का शाब्दिक अर्थ 'घर तथा 'लोजी' का अर्थ विज्ञान या अध्ययन से है। शाब्दिक अर्थानुसार इकोलोजी-पृथ्वी पर पौधों, मनुष्यों, जतुओं व सूक्ष्म जीवाणुओं के 'घर- के रूप में अध्ययन है, एक-दूसरे पर आश्रित होने के कारण ही ये एक साथ रहते हैं जर्मन प्राणीशास्त्री अर्नस्ट हैक्कल (Ernst Haeckel), जिन्होंने सर्वप्रथम सन् 1869 में ओइकोलोजी (Oekologie) शब्द का प्रयोग किया, पारिस्थितिकी के ज्ञाता के रूप में जाने जाते हैं। जीवधारियों (जैविक) व अजैविक (भौतिक पर्यावरण) घटकों के पारस्परिक संपर्क के अध्ययन को ही पारिस्थितिकी विज्ञान कहते हैं। अत: जीवधारियों का आपस में व उनका भौतिक पर्यावरण से अंतर्संबंधों का वैज्ञानिक अध्ययन ही पारिस्थितिकी है।

पारितंत्र के प्रकार (Types of Ecosystems)

पारितंत्र मुख्यत: दो प्रकार के हैं: स्थलीय (Terrestrial) पारितंत्र व जलीय (Aquatic) पारितंत्र। स्थलीय पारितंत्र को पुन: 'बायोम' (Biomes) में विभक्त किया जा सकता है। बायोम, पौधों व प्राणियों का एक समुदाय है, जो एक बड़े भौगोलिक क्षेत्र में पाया जाता है। पृथ्वी पर विभिन्न बायोम की सीमा का निर्धारण जलवायु व अपक्षय संबंधी तत्त्व करते हैं। अत: विशेष परिस्थितियों में पादप व जंतुओं के अंतर्संबंधो के कुल योग को 'बायोम' कहते हैं। इसमें वर्षा, तापमान, आर्द्रता व मिट्टी संबंधी अवयव भी शामिल हैं। संसार के कुछ प्रमुख पारितंत्र : वन, घास क्षेत्र, मरुस्थल और टुण्ड्रा (Tundra) पारितंत्र हैं। जलीय पारितंत्र को समुद्री पारितंत्र व ताजे जल के पारितंत्र में बाँटा जाता है। समुद्री पारितंत्र में महासागरीय, ज्वारनदमुख, प्रवाल भित्ति (Coral reef), पारितंत्र सम्मिलित हैं। ताजे जल के पारितंत्र में झीलें, तालाब, सरिताएँ, कच्छ व दलदल (Marshes and bogs) शामिल हैं।

पारितंत्र की कार्य प्रणाली व संरचना (Structure and functions of Ecosystems)

पारितंत्र की संरचना में वहाँ उपलब्ध पौधों व जंतुओं की प्रजातियों का वर्णन सम्मिलित है। यह उनके (प्राणियों व पौधों की प्रजातियों के) इतिहास, वितरण व उनकी संख्या को भी वर्णित करता है। संरचना की दृष्टि से, सभी पारितंत्र में जैविक व अजैविक कारक होते हैं। अजैविक या भौतिक (Abiotic factors) कारकों में तापमान, वर्षा, सूर्य का प्रकाश, आर्द्रता, मृदा की स्थिति व अजैविक या अकार्बनिक तत्त्व (कार्बन डाई आक्साइड, जल, नाइट्रोजन, कैल्शियम, फॉस्फोरस, पोटाशियम आदि) सम्मिलित हैं। जैविक कारकों (Biotic factors) में उत्पादक, उपभोक्ता (प्राथमिक, द्वितीयक व तृतीयक) तथा अपघटक शामिल हैं। उत्पादकों में सभी हरे पौधे सम्मिलित हैं, जो प्रकाश-संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा अपना

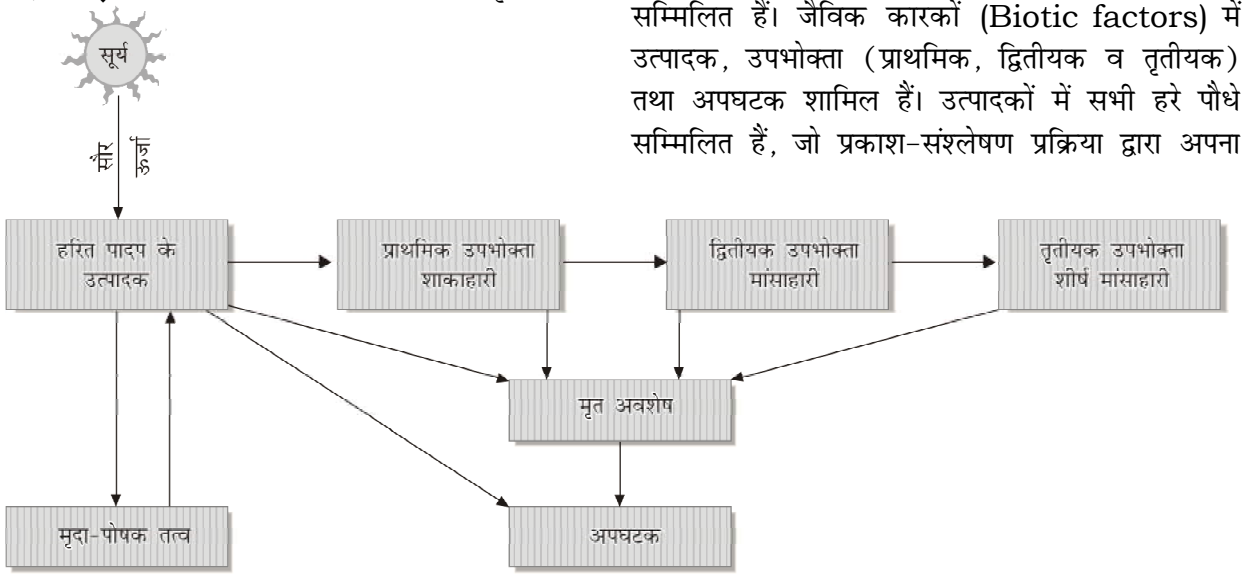

चित्र 15.1 : परितंत्र की कार्य प्रणाली व संरचना

भोजन बनाते हैं। प्रथम श्रेणी के उपभोक्ताओं में शाकाहारी जंतु जैसे- हिरण, बकरी, चूहे और सभी पौधों पर निर्भर जीव शामिल हैं। द्वितीयक श्रेणी के उपभोक्ताओं में सभी माँसाहारी जैसे- साँप, बाघ, शेर आदि शामिल हैं। कुछ माँसाहारी, जो दूसरे माँसाहारी जीवों पर निर्भर हैं, उन्हें चरम स्तर के माँसाहारी (Top carnivores) के रूप में जाना जाता है। जैसे- बाज़ और नेवला आदि। अपघटक, वे हैं, जो मृत जीवों पर निर्भर हैं (जैसे- कौवा और गिद्ध), तथा कुछ अन्य अपघटक, जैसे -बैक्टीरिया और अन्य सूक्ष्म जीवाणु मृतकों को अपघटित कर उन्हें सरल पदार्थों में परिवर्तित करते हैं।

प्राथमिक उपभोक्ता, उत्पादक पर निर्भर हैं, जबकि प्राथमिक उपभोक्ता, द्वितीयक उपभोक्ताओं के भोजन बनते हैं। द्वितीयक उपभोक्ता फिर तृतीयक उपभोक्ताओं के द्वारा खाए जाते हैं। अपघटक प्रत्येक स्तर पर मृतकों पर निर्भर होते हैं। ये अपघटक इन्हें (मृतकों को) विभिन्न पदार्थों, जैसे- कार्बनिक व अकार्बनिक अवयवों और मिट्टी की उर्वरता के लिए पोषक तत्त्वों में परिवर्तित कर देते हैं। पारितंत्र के जीवाणु एक खाद्य - शृंखला से परस्पर जुड़े हुए होते हैं। उदाहरण के लिए - पौधे पर जीवित रहने वाला एक कीड़ा (Beetle) एक मेंढक का भोजन है, जो मेढक साँप का भोजन है और साँप एक बाज़ द्वारा खा लिया जाता है। यह खाद्य क्रम और इस क्रम से एक स्तर से दूसरे स्तर पर ऊर्जा प्रवाह ही खाद्य शृंखला (Food chain) कहलाती है। खाद्य शृंखला की प्रक्रिया में एक स्तर से दूसरे स्तर पर ऊर्जा के रूपांतरण को ऊर्जा प्रवाह (Flow of energy) कहते हैं। खाद्य शृंखलाएँ पृथक अनुक्रम न होकर एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। उदाहरणार्थ - एक चूहा, जो अन्न पर निर्भर है, वह अनेक द्वितीयक उपभोक्ताओं का भोजन है और तृतीयक माँसाहारी अनेक द्वितीयक जीवों से अपने भोजन की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक माँसाहारी जीव एक से अधिक प्रकार के शिकार पर निर्भर है। परिणामस्वरूप खाद्य शृंखलाएँ आसपास में एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। प्रजातियों के इस प्रकार जुड़े होने (अर्थात् जीवों की खाद्य शृंखलाओं के विकल्प उपलब्ध होने पर) को खाद्य जाल (Food web) कहा जाता है।

सामान्यत: दो प्रकार की खाद्य शृंखलाएँ पाई जाती हैं- चराई खाद्य शृंखला (Grazing food-chain) और अपरद खाद्य शृंखला (Detritus food chain) चराई खाद्य शृंखला पौधों (उत्पादक) से आरंभ होकर माँसाहारी (तृतीयक उपभोक्ता) तक जाती है, जिसमें शाकाहारी मध्यम स्तर पर हैं। हर स्तर पर ऊर्जा का ह्रास होता है, जिसमें श्वसन, उत्सर्जन व विघटन प्रक्रियाएं सम्मिलित हैं। खाद्य शृंखला में तीन से पाँच स्तर होते हैं और हर स्तर पर ऊर्जा कम होती जाती है। अपरद खाद्य शृंखला चराई खाद्य शृंखला से प्राप्त मृत पदार्थों पर निर्भर है और इसमें कार्बनिक पदार्थ का अपघटन सम्मिलित हैं।

बायोम के प्रकार (Types of Biomes)

पिछले अध्ययन से आप जान गए हैं कि 'बायोम' का अर्थ क्या है? आओ, हम अब संसार के कुछ प्रमुख बायोम पहचानें और उन्हें रेखांकित करें। संसार के पाँच प्रमुख बायोम इस प्रकार हैं : वन बायोम, मरुस्थलीय बायोम, घासभूमि बायोम, जलीय बायोम और उच्च प्रदेशीय बायोम। इनकी विशेषताओं का विस्तारपूर्वक वर्णन सारणी 15.1 में वर्णित है।

जैव भू-रासायनिक चक्र (Biogeochemical Cycle)

सूर्य ऊर्जा का मूल स्रोत है। जिसपर सम्पूर्ण जीवन निर्भर है। यही ऊर्जा जैवमंडल में प्रकाश संश्लेषण-क्रिया द्वारा जीवन प्रक्रिया आरंभ करती है, जो हरे पौधों के लिए भोजन व ऊर्जा का मुख्य आधार है। प्रकाश संश्लेषण के दौरान कार्बन डाईऑक्साईड, ऑक्सीजन व कार्बनिक यौगिक में परिवर्तित हो जाती है। धरती पर पहुँचने वाले सूर्याताप का बहुत छोटा भाग (केवल 0.1 प्रतिशत) प्रकाशसंश्लेषण प्रक्रिया में काम आता है। इसका आधे से अधिक भाग पौधे की श्वसन-विसर्जन क्रिया में और शेष भाग अस्थाई रूप से पौधे के अन्य भागों में संचित हो जाता है।

पृथ्वी पर जीवन विविध प्रकार के जीवित जीवों के रूप में पाया जाता है। ये जीवधारी विविध प्रकार के पारिस्थितकीय अंतर्संबंधों पर जीवित हैं। जीवधारी बहुलता

सारणी 15.1: संसार के बायोम

बायोम	उप-प्रकार	प्रदेश	जलवायु संबंधी विशेषताएँ	मृदा	वनस्पतिजात व प्राणी जात
वन (Forest)	A. उष्ण कटिबंधीय A1. भूमध्यरेखीय A2. पर्णपाती B. शीतोष्ण कटिबंधीय C. बोरियल	A1. भूमध्य रेखा से 10° उत्तर व दक्षिण अक्षांश A2. 10° से 25° उत्तर व दक्षिण अक्षांश B. पूर्वी उत्तरी अमेरिका, उत्तरी-पूर्वी एशिया, पश्चिमी व मध्य यूरोप C. यूरेशिया व उत्तर अमेरिका का उच्च अक्षांशीय भाग-साइबेरिया का कुछ भाग, अलास्का, कनाडा व स्केंडेनेवियन देश।	A1. तापमान 20° से 25° से॰ लगभग एक समान वितरण A2. तापमान 25° से 30° से॰ वर्षा - वार्षिक औसत 1,000 मि॰मी॰ एक ऋतु में B. तापमान 20° से 30° से॰ वर्षा - समान रूप से वितरित - 750 से 1,500 मि.मी. स्पष्ट ऋतुएं तथा असाधारण शीत। C. छोटी आर्द्र ऋतु व मध्यम रूप से गर्म ग्रीष्म ऋतु तथा लंबी (वर्षा रहित) शीत ऋतु। वर्षा : मुख्यत: हिमपात के रूप में 400 से 1,000 मि॰मी॰	A1. अम्लीय, पोषक तत्त्वों की कमी। A2. पोषक तत्त्वों में धनी B. उपजाऊ, अव-घटक जीवों (व कूड़ा कर्कट आदि पदार्थों) से भरपूर C. अम्लीय व पोषक तत्त्वों की कमी। मिट्टी की अपेक्षाकृत पतली परत।	A1. असंख्य वृक्षों के झुंड, लंबे व घने वृक्ष। A2. कम घने, मध्यम ऊँचाई के वृक्ष, अधिक प्रजातियों का एक साथ पाया जाना। दोनों में कीट-पतंगे, चमगादड़, पक्षी व स्तनधारी जंतुओं का पाया जाना। B. मध्यम घने चौड़े पत्ते वाले वृक्ष। पौधों की प्रजातियों में कम विविधता - ओक, बीच, मेप्पल आदि सामान्य प्रजातियाँ। गिलहरी, खरगोश, पक्षी, काले भालू, पहाड़ी शेर व स्कंक आदि। C. सदाबहार कोणधारी वन जैसे - पाइन, फर व स्प्रूस आदि। कठफोड़ा, चील, भालू, हिरण, खरगोश, भेड़िये व चमगादड़ आदि मुख्य प्राणी।
मरुस्थलीय	1. गर्म व उष्ण मरुस्थल 2. अर्धशुष्क मरुस्थल 3. तटीय मरुस्थल 4. शीत मरुस्थल	1. सहारा, कालाहारी, मरुस्थली, रूब-एल-खाली। 2. गर्म मरुस्थल के गौण क्षेत्र एटेकामा। 3. टुण्ड्रा जलवायु प्रदेश	तापमान : 20° से 45° से॰। 21 से 38° से॰। 15 से 35° से॰। 2 से 25° से॰। वर्षा : A से D -50 मि॰मी॰ से कम	पोषक तत्त्वों से भरपूर व जैव पदार्थों का बहुत कम या न होना।	1 से 3 न्यून वनस्पति-कुछ बड़े स्तनधारी कीट पंतगें, रेंगने वाले जीवधारी व पक्षी। 4. खरगोश, चूहे, हिरण व पृथ्वी पर रहने वाली गिलहरी।
घास भूमि	1. उष्ण कटिबंधीय 2. शीतोष्ण कटिबंधीय (स्टैपी)	1. अफ्रीका के विशाल क्षेत्र, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अमेरिका व भारत 2. यूरेशिया के कुछ भाग व उत्तर अमेरिका।	गर्म, उष्ण जलवायु, वर्षा 500 से 1,250 मि.मी.। उष्ण ग्रीष्म व शीत ऋतु। वर्षा : 500 से 900 मि.मी.।	सर्धित मृदा व साथ ही ह्यूमस की पतली परत।	घास, पेड़ व लंबी झाड़ियों की अनुपस्थिति। जिराफ, जेबरा, भैंस, चीता, लक्कड़बग्घा, हाथी, चूहे, साँप व अन्य कीड़े आदि जीव। घास, कहीं - कहीं वृक्ष जैसे - ओक व मुलायम

बायोम	उप-प्रकार	प्रदेश	जलवायु संबंधी विशेषताएँ	मृदा	वनस्पतिजात व प्राणी जात
					लकड़ी के वृक्ष - विलो आदि। गज़ेल जेबरा, गेंडे, जंगली घोड़े, शेर, तरह-तरह के पक्षी, कीड़े, साँप आदि जीव-जंतु
जलीय (Acquatic)	1. ताजा जल के 2. समुद्री जल के	1. झीलें, नदियाँ, सरिताएँ व अन्य आर्द्र भूमि 2. महासागर, प्रवाल-भित्ति, लैगून व ज्वारनद मुख (Estuaries)	1 से 2° से.। तापमान में विविधता - वायुदाब व आर्द्रता अधिक	1. जल : दलदल 2. जल: समुद्री दलदल	शैवाल व अन्य जलीय व समुद्री पादप समुदाय व साथ ही पानी में रहने वाली जंतु व प्राणी।
पर्वतीय (Altitudinal)	-------	ऊँची पर्वतीय श्रेणियों के ढाल जैसे - हिमालय एंडीज व रॉकी पर्वत क्षेत्र	तापमान व वर्षा मे भिन्नता - अक्षांशों पर आधारित।	ढाल - रेगोलिथ से ढके हुए।	पर्णपाती से टुण्ड्रा प्रकार की वनस्पति, ऊँचाई के आधार पर भिन्नता।

व विविधता में ही जिंदा रह सकते हैं। इसमें (अर्थात्, जीवित रहने की प्रक्रिया में) विधिवत प्रवाह जैसे-ऊर्जा, जल व पोषक तत्त्वों की उपस्थिति सम्मिलित है। इनकी उपलब्धता संसार के विभिन्न भागों में भिन्न है। यह भिन्नता क्षेत्रीय होने के साथ-साथ सामयिक (अर्थात् वर्ष के 12 महीनों में भी भिन्न है) भी है। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि पिछले 100 करोड़ वर्षों में वायुमंडल व जलमंडल की संरचना में रासायनिक घटकों का संतुलन लगभग एक जैसा अर्थात् बदलाव रहित रहा है। रासायनिक तत्त्वों का यह संतुलन पौधे व प्राणी ऊतकों से होने वाले चक्रीय प्रवाह के द्वारा बना रहता है। यह चक्र जीवों द्वारा रासायनिक तत्त्वों के अवशोषण से आरंभ होता है और उनके वायु, जल व मिट्टी में विघटन से पुनः आरंभ होता है। ये चक्र मुख्यतः सौर ताप से संचालित होते हैं। जैवमंडल में जीवधारी व पर्यावरण के बीच ये रासायनिक तत्त्वों के चक्रीय प्रवाह जैव भू-रासायनिक चक्र (Biogeochemical cycles) कहे जाते हैं। 'बायो' (Bio) का अर्थ है जीव तथा 'ज्यो' (Geo) का तात्पर्य पृथ्वी पर उपस्थित चट्टानें, मिट्टी, वायु व जल से है। जैव भू-रासायनिक चक्र दो प्रकार के हैं - एक गैसीय (Gaseous cycle) और दूसरा तलछटी चक्र (Sedimentary cycle), गैसीय चक्र में पदार्थ का मुख्य भंडार/स्रोत वायुमंडल व महासागर हैं। तलछटी चक्र के प्रमुख भंडार पृथ्वी की भूपर्पटी पर पाई जाने वाली मिट्टी, तलछट व अन्य चट्टानें हैं।

जलचक्र (The water cycle)

सभी जीवधारी, वायुमंडल व स्थलमंडल में जल का एक चक्र बनाए रखते हैं, जो तरल, गैस व ठोस अवस्था में है- इसे ही जलीय चक्र कहा जाता है (जलचक्र के लिए अध्याय 13 देखें)।

कार्बन चक्र (The carbon cycle)

सभी जीवधारियों में कार्बन पाया जाता है। यह सभी कार्बनिक यौगिक का मूल तत्त्व हैं। जैवमंडल में असंख्य कार्बन यौगिक के रूप में जीवों में विद्यमान हैं। कार्बन चक्र कार्बन डाइऑक्साइड का परिवर्तित रूप है। यह परिवर्तन पौधों में प्रकाश-संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा कार्बन डाइ ऑक्साइड के यौगिकीकरण द्वारा आरंभ होता है। इस प्रक्रिया से कार्बोहाइड्रेट्स व ग्लूकोस बनता है, जो कार्बनिक यौगिक जैसे-स्टार्च, सेल्यूलोस, सक्रोज़ (Sucrose) के रूप में पौधों में संचित हो जाता है। कार्बोहाइड्रेट्स का कुछ भाग सीधे पौधों की जैविक क्रियाओं में प्रयोग हो जाता है। इस प्रक्रिया के दौरान

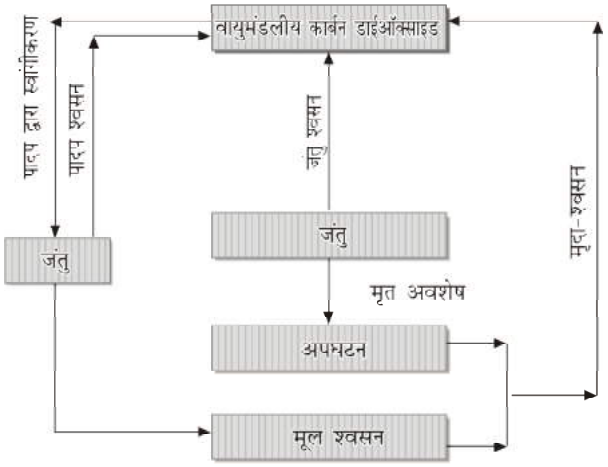

चित्र 15.2 : कार्बन चक्र

विघटन से पौधों के पत्तों व जड़ों द्वारा कार्बन डाईऑक्साइड गैस मुक्त होती है, शेष कार्बोहाइड्रेट्स, जो पौधों की जैविक क्रियाओं में प्रयुक्त नहीं होते, वे पौधों के ऊतकों में संचित हो जाते हैं। ये पौधे या तो शाकाहारियों के भोजन बनते हैं, अन्यथा सूक्ष्म जीवों द्वारा विघटित हो जाते हैं। शाकाहारी उपभोग किये गए कार्बोहाइड्रेटस को कार्बन डाइऑक्साइड में परिवर्तित करते हैं, और श्वसन क्रिया द्वारा वायुमंडल में छोड़ते हैं। इनमें शेष कार्बोहाइड्रेटस का जंतुओं के मरने पर, सूक्ष्म जीव अपघटन करते हैं। सूक्ष्म जीवाणुओं द्वारा कार्बोहाइड्रेट्स ऑक्सीजन प्रक्रिया द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड में परिवर्तित होकर पुनः वायुमंडल में आ जाती है (चित्र 15.2)।

ऑक्सीजन चक्र (The oxygen cycle)

प्रकाश-संश्लेषण क्रिया का प्रमुख सह-परिणाम (By product) ऑक्सीजन है। यह कार्बोहाइड्रेट्स के ऑक्सीकरण में सम्मिलित है जिससे ऊर्जा, कार्बन डाइऑक्साइड व जल विमुक्त होते हैं। ऑक्सीजन चक्र बहुत ही जटिल प्रक्रिया है। बहुत से रासायनिक तत्त्वों और सम्मिश्रणों में ऑक्सीजन पाई जाती है। यह नाइट्रोजन के साथ मिलकर नाइट्रेट बनाती है तथा बहुत से अन्य खनिजों व तत्त्वों से मिलकर कई तरह के ऑक्साइड बनाती है जैसे- आयरन ऑक्साइड, एल्यूमिनियम ऑक्साइड आदि। सूर्यप्रकाश में प्रकाश-संश्लेषण प्रक्रिया के दौरान, जल अणुओं (H_2O) के विघटन से ऑक्सीजन उत्पन्न होती है और पौधों की वाष्पोत्सर्जन प्रक्रिया के दौरान भी यह वायुमंडल में पहुंचती हैं।

नाइट्रोजन चक्र (The nitrogen cycle)

वायुमंडल की संरचना का प्रमुख घटक नाइट्रोजन, वायुमंडलीय गैसों का 78 प्रतिशत भाग है। विभिन्न कार्बनिक यौगिक जैसे- एमिनो एसिड, न्यूक्लिक एसिड,

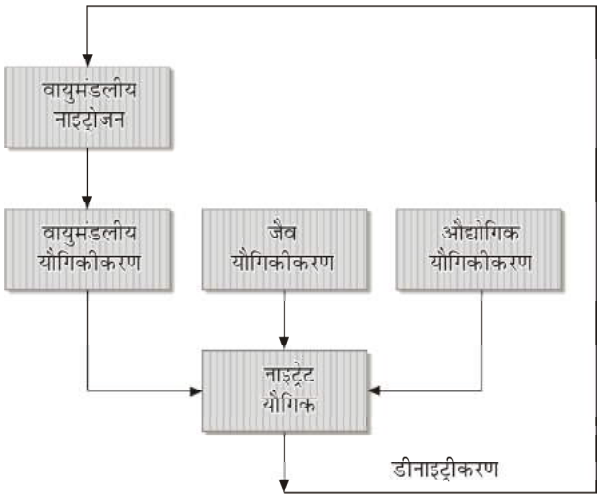

चित्र 15.3 : नाइट्रोजन चक्र

विटामिन व वर्णक (Pigment) आदि में यह एक महत्त्वपूर्ण घटक है। (वायु में स्वतंत्र रूप से पाई जाने वाली नाइट्रोजन को अधिकांश जीव प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण करने में असमर्थ हैं) केवल कुछ विशिष्ट प्रकार के जीव जैसे- कुछ मृदा जीवाणु व ब्लू ग्रीन एल्गी (Blue green algae) ही इसे प्रत्यक्ष गैसीय रूप में ग्रहण करने में सक्षम हैं। सामान्यतः नाइट्रोजन यौगिकीकरण (Fixation) द्वारा ही प्रयोग में लाई जाती है। नाइट्रोजन का लगभग 90 प्रतिशत भाग जैविक (Biological) है, अर्थात् जीव ही ग्रहण कर सकते हैं। स्वतंत्र नाइट्रोजन का प्रमुख स्रोत मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रिया व संबंधित पौधों की जड़ें व रंध्र वाली मृदा है, जहाँ से यह वायुमंडल में पहुँचती है। वायुमंडल में भी बिजली चमकने (Lightening) व अंतरिक्ष विकिरण (Cosmic radiation) द्वारा नाइट्रोजन का यौगिकीकरण होता है।

महासागरों में कुछ समुद्री जीव भी इसका यौगिकीकरण करते हैं। वायुमंडलीय नाइट्रोजन के इस तरह यौगिक रूप में उपलब्ध होने पर हरे पौधों में इसका स्वांगीकरण (Nitrogen assimilation) होता है। शाकाहारी जंतुओं द्वारा इन पौधों के खाने पर इसका (नाइट्रोजन) कुछ भाग उनमें चला जाता है। फिर मृत पौधों व जानवरों के नाइट्रोजनी अपशिष्ट (Excretion of nitrogenous wastes) मिट्टी, में उपस्थित बैक्टीरिया द्वारा नाइट्राइट में परिवर्तित हो जाते हैं। कुछ जीवाणु नाइट्राइट को नाइट्रेट में परिवर्तित करने में सक्षम होते हैं व पुनः हरे पौधों द्वारा नाइट्रोजन –यौगिकीकरण हो जाता है। कुछ अन्य प्रकार के जीवाणु इन नाइट्रेट को पुनः स्वतंत्र नाइट्रोजन में परिवर्तित करने में सक्षम होते हैं और इस प्रक्रिया को डी नाइट्रीकरण (De-nitrification) कहा जाता है (चित्र 15.3)।

अन्य खनिज चक्र (Other mineral cycles)

जैव मंडल में मुख्य भू-रासायनिक तत्त्वों-कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन और हाइड्रोजन के अतिरिक्त पौधों व प्राणी जीवन के लिए अत्यधिक महत्त्व के बहुत से अन्य खनिज मिलते हैं। जीवधारियों के लिए आवश्यक ये खनिज पदार्थ प्राथमिक तौर पर अकार्बनिक रूप में मिलते हैं, जैसे- फॉस्फोरस, सल्फर, कैल्शियम और पोटैशियम। प्रायः ये घुलनशील लवणों के रूप में मिट्टी, में या झील में अथवा नदियों व समुद्री जल में पाए जाते हैं। जब घुलनशील लवण जल चक्र में सम्मिलित हो जाते हैं, तब ये अपक्षय प्रक्रिया द्वारा पृथ्वी की पर्पटी पर और फिर बाद में समुद्र तक पहुँच जाते हैं। अन्य लवण तलछट के रूप में धरातल पर पहुँचते हैं और फिर अपक्षय से चक्र में शमिल हो जाते हैं। सभी जीवधारी अपने पर्यावरण में घुलनशील अवस्था में उपस्थित खनिज लवणों से ही अपनी खनिजों की आवश्यकता को पूरा करते हैं। कुछ अन्य जंतु पौधों व प्राणियों के भक्षण से इन खनिजों को प्राप्त करते हैं। जीवधारियों की मृत्यु के बाद ये खनिज अपघटित व प्रवाहित होकर मिट्टी व जल में मिल जाते हैं।

पारिस्थितिक संतुलन (Ecological balance)

किसी पारितंत्र या आवास में जीवों के समुदाय में परस्पर गतिक साम्यता की अवस्था ही पारिस्थितिक संतुलन है। यह तभी संभव है, जब जीवधारियों की विविधता अपेक्षाकृत स्थायी रहे। क्रमशः परिवर्तन भी हो, लेकिन ऐसा प्राकृतिक *अनुक्रमण* (Natural succession) के द्वारा ही होता है। इसे पारितंत्र में हर प्रजाति की संख्या के एक स्थाई संतुलन के रूप में भी वर्णित किया जा सकता है। यह संतुलन निश्चित प्रजातियों में प्रतिस्पर्धा व आपसी सहयोग से होता है। कुछ प्रजातियों के जिंदा रहने के संघर्ष से भी पर्यावरण संतुलन प्राप्त किया जाता है। संतुलन इस बात पर भी निर्भर करता है कि कुछ प्रजातियाँ अपने भोजन व जीवित रहने के लिए दूसरी प्रजातियों पर निर्भर रहती हैं (जिससे प्रजातियों की संख्या निश्चित रहती है और संतुलन बना रहता है) इसके उदाहरण विशाल घास के मैदानों में मिलते हैं, जहाँ शाकाहारी जंतु (हिरण, जेबरा व भैंस आदि) अत्यधिक संख्या में होते हैं। दूसरी तरफ माँसाहारी (बाघ, शेर आदि) अधिक नहीं होते और शाकाहारियों के शिकार पर निर्भर होते हैं, अतः इनकी संख्या नियंत्रित रहती है। पौधों के पारिस्थितिक संतुलन में बदलाव के कारण हैं। जैसे- वनों की प्रारंभिक प्रजातियों में कोई व्यवधान जैसे- स्थानांतरी कृषि में वनों को साफ करने से प्रजातियों के वितरण में बदलाव आता है। यह परिवर्तन प्रतिस्पर्धा के कारण है, जहाँ द्वितीय वन-प्रजातियों जैसे- घास, बाँस और चीड़ आदि के वृक्ष प्रारंभिक प्रजातियों के स्थान पर उगते हैं और प्रारंभिक (Original) वनों की संरचना को बदल देते हैं। यही *अनुक्रमण* (Succession) कहलाता है।

पारिस्थितिक असंतुलन के कारण- नई प्रजातियों का आगमन, प्राकृतिक विपदाएं और मानव जनित कारक भी हैं। मनुष्य के हस्तक्षेप से पादप समुदाय का संतुलन प्रभावित होता है, जो अन्ततोगत्वा पूरे पारितंत्र के संतुलन को प्रभावित करता है। इस असंतुलन से कई अन्य द्वितीय अनुक्रमण आते हैं। प्राकृतिक संसाधनों पर जनसंख्या दबाव

से भी पारिस्थितिकी बहुत प्रभावित हुई है। इसने पर्यावरण के वास्तविक रूप को लगभग नष्ट कर दिया है और सामान्य पर्यावरण पर भी बुरा प्रभाव डाला है। पर्यावरण असंतुलन से ही प्राकृतिक आपदाएँ जैसे –बाढ़ भूकंप, बीमारियाँ और कई जलवायु सबंधी परिवर्तन होते हैं।

विशेष आवास स्थानों में पौधों व प्राणी समुदायों में घनिष्ट अंतर्संबंध पाए जाते हैं। निश्चित स्थानों पर जीवों में विविधता वहाँ के पर्यावरणीय कारकों का संकेतक है। इन कारकों का समुचित ज्ञान व समझ ही पारितंत्र के संरक्षण व बचाव के प्रमुख आधार हैं।

अभ्यास

1. बहुवैकल्पिक प्रश्न :

(i) निम्नलिखित में से कौन जैवमंडल में सम्मिलित हैं :
(क) केवल पौधे (ख) केवल प्राणी
(ग) सभी जैव व अजैव जीव (घ) सभी जीवित जीव।

(ii) उष्णकटिबंधीय घास के मैदान निम्न में से किस नाम से जाने जाते हैं?
(क) प्रेयरी (ख) स्टैपी
(ग) सवाना (घ) इनमें से कोई नहीं

(iii) चट्टानों में पाए जाने वाले लोहांश के साथ ऑक्सीजन मिलकर निम्नलिखित में से क्या बनाती है?
(क) आयरन कार्बोनेट (ख) आयरन ऑक्साइड
(ग) आयरन नाइट्राइट (घ) आयरन सल्फेट

(iv) प्रकाश–संश्लेषण प्रक्रिया के दौरान, प्रकाश की उपस्थिति में कार्बन डाईऑक्साइड जल के साथ मिलकर क्या बनाती है?
(क) प्रोटीन (ख) कार्बोहाइड्रेट्स
(ग) एमिनोएसिड (घ) विटामिन

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए :

(i) पारिस्थितिकी से आप क्या समझते हैं ?
(ii) पारितंत्र (Ecological system) क्या है? संसार के प्रमुख पारितंत्र प्रकारों को बताएं।
(iii) खाद्य शृंखला क्या है? चराई खाद्य शृंखला का एक उदाहरण देते हुए इसके अनेक स्तर बताएं।
(iv) खाद्य जाल (Food web) से आप क्या समझते है? उदाहरण सहित बताएं।
(v) बायोम (Biome) क्या है?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दीजिए :

(i) संसार के विभिन्न वन बायोम (Forest biomes) की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का वर्णन करें।
(ii) जैव भू–रासायनिक चक्र (Biogeochemical cycle) क्या है? वायुमंडल में नाइट्रोजन का यौगिकीकरण (Fixation) कैसे होता है? वर्णन करें।
(iii) पारिस्थितिक संतुलन (Ecological balance) क्या है? इसके असंतुलन को रोकने के महत्त्वपूर्ण उपायों की चर्चा करें।

परियोजना कार्य

(i) प्रत्येक बायोम की प्रमुख विशेषताओं को बताते हुए विश्व के मानचित्र पर विभिन्न बायोम के वितरण को दर्शाइए।

(ii) अपने स्कूल प्रांगण में पाए जाने वाले पेड़, झाड़ी व सदाबहार पौधों पर एक संक्षिप्त लेख लिखें और लगभग आधे दिन यह पर्यवेक्षण करें कि किस प्रकार के पक्षी इस वाटिका में आते हैं। क्या आप इन पक्षियों की विविधता का भी उल्लेख कर सकते हैं?

अध्याय

16

जैव-विविधता एवं संरक्षण

आप भूआकृतिक प्रक्रियाओं विशेषकर अपक्षय और विभिन्न जलवायवी क्षेत्रों में अपक्षय आदि के विषय में पहले ही पढ़ चुके हैं। यदि आपको स्मरण नहीं है, तो संक्षिप्त सार के लिए अध्याय 6 में चित्र 6.2 देखें। यह अपक्षय प्रावार (Weathering mantle) वनस्पति विविधता का आधार है, अत: इसे जैव-विविधता का आधार माना गया है। सौर ऊर्जा और जल ही अपक्षय में विविधता और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न जैव-विविधता का मुख्य कारण है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे क्षेत्र, जहाँ ऊर्जा व जल की उपलब्धता अधिक है, वहीं जैव-विविधता भी व्यापक स्तर पर है।

आज जो जैव-विविधता हम देखते हैं, वह 2.5 से 3.5 अरब वर्षों के विकास का परिणाम है। मानव जीवन के प्रारंभ होने से पहले, पृथ्वी पर जैव-विविधता किसी भी अन्य काल से अधिक थी। मानव के आने से जैव-विविधता में तेजी से कमी आने लगी, क्योंकि किसी एक या अन्य प्रजाति का आवश्यकता से अधिक उपभोग होने के कारण, वह लुप्त होने लगी। अनुमान के अनुसार, संसार में कुल प्रजातियों की संख्या 20 लाख से 10 करोड़ तक है, लेकिन एक करोड़ ही इसका सही अनुमान है। नयी प्रजातियों की खोज लगातार जारी है और उनमें से अधिकांश का वर्गीकरण भी नहीं हुआ है। (एक अनुमान के अनुसार दक्षिण अमेरिका की ताज़े पानी की लगभग 40 प्रतिशत मछलियों का वर्गीकरण नहीं हुआ)। उष्ण कटिबंधीय वनों में जैव-विविधता की अधिकता है।

प्रजातियों के दृष्टिकोण से और अकेले जीवधारी के दृष्टिकोण से जैव-विविधता सतत् विकास का तंत्र है। पृथ्वी पर किसी प्रजाति की औसत आयु 10 से 40 लाख वर्ष होने का अनुमान है। ऐसा भी माना जाता है कि लगभग 99 प्रतिशत प्रजातियाँ, जो कभी पृथ्वी पर रहती थी, आज लुप्त हो चुकी हैं। पृथ्वी पर जैव-विविधता एक जैसी नहीं है। जैव-विविधता उष्ण कटिबंधीय प्रदेशों में अधिक होती है। जैसे-जैसे हम ध्रुवीय प्रदेशों की तरफ बढ़ते हैं, प्रजातियों की विविधता तो कम होती जाती है, लेकिन जीवधारियों की संख्या अधिक होती जाती है।

जैव विविधता दो शब्दों के मेल से बना है, (Bio) 'बायो' का अर्थ है- जीव तथा डाइवर्सिटी (Diversity) का अर्थ है- विविधता। साधारण शब्दों में किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में पाए जाने वाले जीवों की संख्या और उनकी विविधता को जैव-विविधता कहते हैं। इसका संबंध पौधों के प्रकार, प्राणियों तथा सूक्ष्म जीवाणुओं से है। उनकी आनुवंशिकी और उनके द्वारा निर्मित पारितंत्र से है। यह पृथ्वी पर पाए जाने वाले जीवधारियों की परिवर्तनशीलता, एक ही प्रजाति तथा विभिन्न प्रजातियों में परिवर्तनशीलता तथा विभिन्न पारितंत्रों में विविधता से संबंधित है। जैव-विविधता सजीव संपदा है। यह विकास के लाखों वर्षों के इतिहास का परिणाम है।

जैव-विविधता को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है- (i) आनुवांशिक जैव-विविधता (Genetic diversity), (ii) प्रजातीय जैव-विविधता (Species diversity) तथा (iii) पारितंत्रीय जैव-विविधता (Ecosystem diversity)।

आनुवांशिक जैव-विविधता (Genetic biodiversity)

जीवन निर्माण के लिए जीन (Gene) एक मूलभूत इकाई है। किसी प्रजाति में जीन की विविधता ही

आनुवंशिक जैव-विविधता है। समान भौतिक लक्षणों वाले जीवों के समूह को प्रजाति कहते हैं। मानव आनुवांशिक रूप से 'होमोसेपियन' (Homosapiens) प्रजाति से संबंधित है, जिसमें कद, रंग और अलग दिखावट जैसे शारीरिक लक्षणों में काफी भिन्नता है। इसका कारण आनुवांशिक विविधता है। विभिन्न प्रजातियों के विकास व फलने-फूलने के लिए आनुवांशिक विविधता अत्यधिक अनिवार्य है।

प्रजातीय विविधता (Species diversity)

यह प्रजातियों की अनेकरूपता को बताती है। यह किसी निर्धारित क्षेत्र में प्रजातियों की संख्या से संबंधित है। प्रजातियों की विविधता, उनकी समृद्धि, प्रकार तथा बहुलता से आँकी जा सकती है। कुछ क्षेत्रों में प्रजातियों की संख्या अधिक होती है और कुछ में कम। जिन क्षेत्रों में प्रजातीय विविधता अधिक होती है, उन्हें विविधता के 'हॉट-स्पॉट' (Hot spots) कहते हैं। (चित्र 16.1)

पारितंत्रीय विविधता (Ecosystem diversity)

आपने पिछले अध्याय में पारितंत्रों के प्रकारों में व्यापक भिन्नता और प्रत्येक प्रकार के पारितंत्रों में होने वाले पारितंत्रीय प्रक्रियाएँ तथा आवास स्थानों की भिन्नता ही पारितंत्रीय विविधता बनाते हैं। पारितंत्रीय विविधता का परिसीमन करना मुश्किल और जटिल है, क्योंकि समुदायों (प्रजातियों का समूह) और पारितंत्र की सीमाएँ निश्चित नहीं हैं।

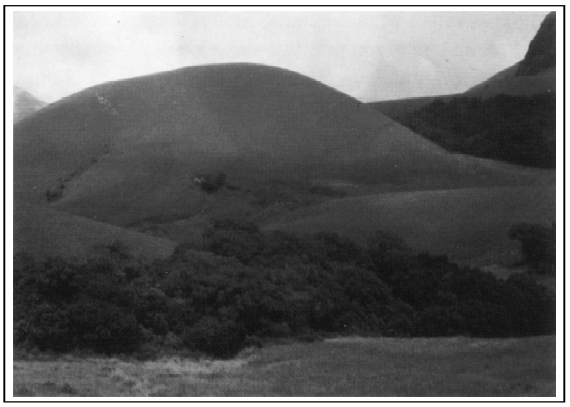

इंदिरा गाँधी नेशनल पार्क में (अन्नामलाई पश्चिमी घाट) घास भूमि एवं उष्ण कटिबंधीय शोला वन - पारितंत्रीय विविधता का एक उदाहरण

जैव-विविधता का महत्त्व (Importance of biodiversity)

जैव-विविधता ने मानव संस्कृति के विकास में बहुत योगदान दिया है और इसी प्रकार, मानव समुदायों ने भी आनुवंशिक, प्रजातीय व पारिस्थितिक स्तरों पर प्राकृतिक विविधता को बनाए रखने में बड़ा योगदान दिया है। जैव-विविधता की पारिस्थितिक (Ecological), आर्थिक (Economic) और वैज्ञानिक (Scientific) भूमिकाएँ प्रमुख है।

जैव-विविधता की पारिस्थितिकीय भूमिका (Ecological role of biodiversity)

पारितंत्र में विभिन्न प्रजातियाँ कोई न कोई क्रिया करती हैं। पारितंत्र में कोई भी प्रजाति बिना कारण न तो विकसित हो सकती है और न ही बनी रह सकती है। अर्थात्, प्रत्येक जीव अपनी ज़रूरत पूरा करने के साथ-साथ दूसरे जीवों के पनपने में भी सहायक होता है। क्या आप बता सकते हैं कि मानव, पारितंत्रों के बने रहने में क्या योगदान देता है? जीव व प्रजातियाँ ऊर्जा ग्रहण कर उसका संग्रहण करती हैं, कार्बनिक पदार्थ उत्पन्न एवं विघटित करती हैं और पारितंत्र में जल व पोषक तत्त्वों के चक्र को बनाए रखने में सहायक होती हैं। इसके अतिरिक्त प्रजातियाँ वायुमंडलीय गैस को स्थिर करती हैं और जलवायु को नियंत्रित करने में सहायक होती हैं। ये पारितंत्री क्रियाएँ मानव जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण क्रियाएँ हैं। पारितंत्र में जितनी अधिक विविधता होगी प्रजातियों के प्रतिकूल स्थितियों में भी रहने की संभावना और उनकी उत्पादकता भी उतनी ही अधिक होगी। प्रजातियों की क्षति से तंत्र के बने रहने की क्षमता भी कम हो जाएगी। अधिक आनुवंशिक विविधता वाली प्रजातियों की तरह अधिक जैव-विविधता वाले पारितंत्र में पर्यावरण के बदलावों को सहन करने की अधिक सक्षमता होती है। दूसरे शब्दों में, जिस पारितंत्र में जितनी प्रकार की प्रजातियाँ होंगी, वह पारितंत्र उतना ही अधिक स्थायी होगा।

जैव-विविधता की आर्थिक भूमिका (Ecological role of biodiversity)

सभी मनुष्यों के लिए दैनिक जीवन में जैव-विविधता एक महत्वपूर्ण संसाधन है। जैव-विविधता का एक महत्वपूर्ण भाग 'फसलों की विविधता' (Crop diversity) है, जिसे *कृषि जैव-विविधता* भी कहा जाता है। जैव-विविधता को संसाधनों के उन भंडारों के रूप में भी समझा जा सकता है, जिनकी उपयोगिता भोज्य पदार्थ, औषधियाँ और सौंदर्य प्रसाधन आदि बनाने में है। जैव संसाधनों की ये परिकल्पना जैव-विविधता के विनाश के लिए भी उत्तरदायी है। साथ ही यह संसाधनों के विभाजन और बँटवारे को लेकर उत्पन्न नये विवादों का भी जनक है। खाद्य फसलें, पशु, वन संसाधन, मत्स्य और दवा संसाधन आदि कुछ ऐसे प्रमुख आर्थिक महत्त्व के उत्पाद हैं, जो मानव को जैव-विविधता के फलस्वरूप उपलब्ध होते हैं।

जैव-विविधता की वैज्ञानिक भूमिका (Scientific role of biodiversity)

जैव-विविधता इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि प्रत्येक प्रजाति हमें यह संकेत दे सकती है कि जीवन का आरंभ कैसे हुआ और यह भविष्य में कैसे विकसित होगा। जीवन कैसे चलता है और पारितंत्र, जिसमें हम भी एक प्रजाति हैं, उसे बनाए रखने में प्रत्येक प्रजाति की क्या भूमिका है, इन्हें हम जैव-विविधता से समझ सकते हैं। हम सभी को यह तथ्य समझना चाहिए कि हम स्वयं जिएँ और दूसरी प्रजातियों को भी जीने दें।

यह समझना हमारी नैतिक ज़िम्मेदारी है कि हमारे साथ सभी प्रजातियों को जीवित रहने का अधिकार है। अत: कई प्रजातियों को स्वेच्छा से विलुप्त करना नैतिक रूप से गलत है। जैव-विविधता का स्तर अन्य जीवित प्रजातियों के साथ हमारे संबंध का एक अच्छा पैमाना है। वास्तव में, जैव-विविधता की अवधारणा कई मानव संस्कृतियों का अभिन्न अंग है।

जैव-विविधता का ह्रास (Loss of biodiversity)

पिछले कुछ दशकों से, जनसंख्या वृद्धि के कारण, प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग अधिक होने लगा है। इससे संसार के विभिन्न भागों में प्रजातियों तथा उनके आवास स्थानों में तेज़ी से कमी हुई है। उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र, जो विश्व के कुल क्षेत्र का मात्र एक चौथाई भाग है, यहाँ संसार की तीन चौथाई जनसंख्या रहती है। इस विशाल जनसंख्या की ज़रूरत को पूरा करने के लिए संसाधनों का दोहन और वनोन्मूलन अत्यधिक हुआ है। उष्णकटिबंधीय वर्षा वाले वनों में पृथ्वी की लगभग 50 प्रतिशत प्रजातियाँ पाई जाती हैं और प्राकृतिक आवासों का विनाश पूरे जैवमंडल के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ है।

प्राकृतिक आपदाएँ- जैसे- भूकंप, बाढ़, ज्वालामुखी उद्‌गार, दावानल, सूखा आदि पृथ्वी पर पाई जाने वाली प्राणिजात और वनस्पति जात को क्षति पहुँचाते हैं और परिणामस्वरूप संबंधित प्रभावित प्रदेशों की जैव-विविधता में बदलाव आता है। कीटनाशक और अन्य प्रदूषक, जैसे- हाइड्रोकार्बन (Hydrocarbon) और विषैली भारी धातु (Toxic heavy metals), संवेदनशील और कमज़ोर प्रजातियों को नष्ट कर देते हैं। वे प्रजातियाँ, जो स्थानीय आवास की मूल जैव प्रजाति नहीं हैं, लेकिन उस तंत्र में स्थापित की गई हैं, उन्हें 'विदेशज प्रजातियाँ' (Exotic species) कहा जाता है। ऐसे कई उदाहरण हैं, जब विदेशज प्रजातियों के आगमन से पारितंत्र में प्राकृतिक या मूल जैव समुदाय को व्यापक नुकसान हुआ। पिछले कुछ दशकों के दौरान, कुछ जंतुओं, जैसे- बाघ, चीता, हाथी, गैंडा, मगरमच्छ, मिंक और पक्षियों का, उनके सींग, सूँड़ व खालों के लिए निदर्यतापूर्वक अवैध शिकार किया जा रहा है। इसके फलस्वरूप कुछ प्रजातियाँ लुप्त होने के कगार पर आ गई हैं।

प्राकृतिक संसाधनों व पर्यावरण संरक्षण की अंतर्राष्ट्रीय संस्था (IUCN) ने संकटापन्न पौधों व जीवों की प्रजातियों को उनके संरक्षण के उद्देश्य से तीन वर्गों में विभाजित किया है।

संकटापन्न प्रजातियाँ (Endangered species)

इसमें वे सभी प्रजातियाँ सम्मिलित हैं, जिनके लुप्त हो जाने का खतरा है। इंटरनेशनल यूनियन फॉर द कंज़रवेशन ऑफ नेचर एंड नेचुरल रिसोर्सेज़ (IUCN) विश्व की सभी संकटापन्न प्रजातियों के बारे में (Red list) रेड लिस्ट के नाम से सूचना प्रकाशित करता है।

रेड पांडा - एक संकटापन्न प्रजाति

जेनकेरिया सेबसटिनी - एक अत्यंत संकटापन्न घास प्रजाति अगस्थियामलाई शिखर (भारत)

सुभेद्य प्रजातियाँ (Vulnerable species)

इसमें वे प्रजातियाँ सम्मिलित हैं, जिन्हें यदि संरक्षित नहीं, किया गया या उनके विलुप्त होने में सहयोगी कारक यदि जारी रहे तो निकट भविष्य में उनके विलुप्त होने का खतरा है। इनकी संख्या अत्यधिक कम होने के कारण, इनका जीवित रहना सुनिश्चित नहीं है।

दुर्लभ प्रजातियाँ (Rare species)

संसार में इन प्रजातियों की संख्या बहुत कम है। ये प्रजातियाँ कुछ ही स्थानों पर सीमित हैं या बड़े क्षेत्र में विरल रूप में बिखरी हुई हैं।

जैव-विविधता का संरक्षण (Conservation of biodiversity)

मानव के अस्तित्व के लिए जैव-विविधता अति आवश्यक

हमबोशिया डेकरेंस बेड- दक्षिण पश्चिमी घाट (भारत) की एक दुर्लभ प्रजाति

है। जीवन का हर रूप एक दूसरे पर इतना निर्भर है कि किसी एक प्रजाति पर संकट आने से दूसरों में असंतुलन की स्थिति पैदा हो जाती है। यदि पौधों और प्राणियों की प्रजातियाँ संकटापन्न होती हैं, तो इससे पर्यावरण में गिरावट उत्पन्न होती है और अन्ततोगत्वा मनुष्य का अपना अस्तित्व भी खतरे में पड़ सकता है।

आज यह अति अनिवार्य है कि मानव को पर्यावरण-मैत्री संबंधी पद्धतियों के प्रति जागरूक किया जाए और विकास की ऐसी व्यावहारिक गतिविधियाँ अपनाई जाएँ, जो दूसरे जीवों के साथ समन्वित हों और सतत् पोषणीय (Sustainable) हों। इस तथ्य के प्रति भी जागरूकता बढ़ रही है कि संरक्षण तभी संभव और दीर्घकालिक होगा, जब स्थानीय समुदायों व प्रत्येक व्यक्ति की इसमें भागीदारी होगी। इसके लिए स्थानीय स्तर पर संस्थागत संरचनाओं का विकास आवश्यक है। केवल प्रजातियों का संरक्षण और आवास स्थान की सुरक्षा ही अहम समस्या नहीं है, बल्कि संरक्षण की प्रक्रिया को जारी रखना भी उतना ही ज़रूरी है।

सन् 1992 में ब्राजील के रियो-डी-जेनेरो (Rio-de-Janeiro) में हुए जैव-विविधता के सम्मेलन (Earth summit) में लिए गए संकल्पों का भारत अन्य 155 देशों सहित हस्ताक्षरी है। विश्व संरक्षण कार्य योजना में जैव-विविधता संरक्षण के निम्न तरीके सुझाए गए हैं:

(i) संकटापन्न प्रजातियों के संरक्षण के लिए प्रयास करने चाहिए।

(ii) प्रजातियों को लुप्त होने से बचाने के लिए उचित योजनाएँ व प्रबंधन अपेक्षित हैं।

(iii) खाद्यान्नों की किस्में, चारे संबंधी पौधों की किस्में, इमारती लकड़ी के पेड़, पशुधन, जंतु व उनकी वन्य प्रजातियों की किस्मों को संरक्षित करना चाहिए।

(iv) प्रत्येक देश को वन्य जीवों के आवास को चिह्नित कर उनकी सुरक्षा को सुनिश्चित करना चाहिए।

(v) प्रजातियों के पलने-बढ़ने तथा विकसित होने के स्थान सुरक्षित व संरक्षित हों।

(vi) वन्य जीवों व पौधों का अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, नियमों के अनुरूप हो।

भारत सरकार ने प्राकृतिक सीमाओं के भीतर विभिन्न प्रकार की प्रजातियों को बचाने, संरक्षित करने और विस्तार करने के लिए, वन्य जीव सुरक्षा अधिनियम 1972 (Wild life protection act, 1972), पारित किया है, जिसके अंतर्गत नेशनल पार्क (National parks), पशुविहार (Sanctuaries) स्थापित किये गए तथा *जीवमंडल आरक्षित क्षेत्र* (Biosphere reserves) घोषित किये गए। इन संरक्षित क्षेत्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन 'भारत: भौतिक पर्यावरण' (एन.सी.ई.आर.टी., 2006) पुस्तक में किया गया है।

वह देश, जो उष्ण कटिबंधीय क्षेत्र में स्थित हैं, उनमें संसार की सर्वाधिक प्रजातीय विविधता पाई जाती है। उन्हें '*महा विविधता केंद्र*' (Mega diversity centres) कहा जाता है। इन देशों की संख्या 12 है और उनके नाम हैं : मैक्सिको, कोलंबिया, इक्वेडोर, पेरू, ब्राज़ील, डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कांगो, मेडागास्कर, चीन, भारत, मलेशिया, इंडोनेशिया और आस्ट्रेलिया। इन देशों में समृद्ध महा-विविधता के केंद्र स्थित हैं। ऐसे क्षेत्र, जो अधिक संकट में हैं, उनमें संसाधनों को उपलब्ध कराने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संरक्षण संघ (IUCN) ने जैव-विविधता हॉट-स्पॉट (Hot spots) क्षेत्र के रूप में निर्धारित किया है (चित्र 16.1)। हॉट-स्पॉट उनकी वनस्पति के आधार पर परिभाषित किये गए हैं। पादप महत्वपूर्ण है, क्योंकि ये ही किसी पारितंत्र की प्राथमिक उत्पादकता को निर्धारित करते हैं। यह भी देखा गया है कि ज़्यादातर हॉट-स्पॉट में

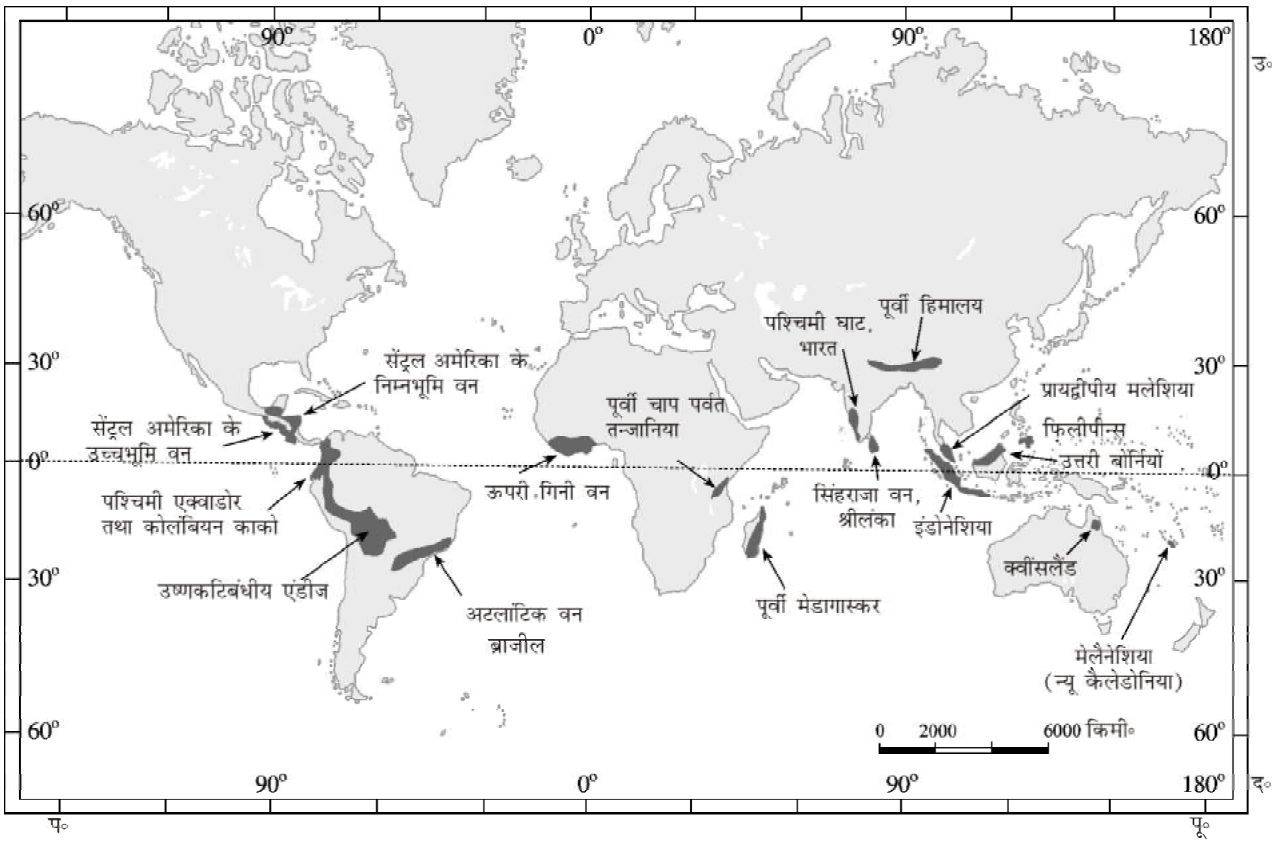

चित्र 16.1: कुछ पारिस्थितिक हॉट-स्पॉट (Ecological 'hotspots' in the world)

रहने वाले प्रजाति भोजन, जलाने के लिए लकड़ी, कृषि भूमि और इमारती लकड़ी आदि के लिए वहाँ पाई जाने वाली समृद्ध पारितंत्रों पर ही निर्भर है। उदाहरण के लिए मेडागास्कर में पाए जाने वाले कुल पौधों व जीवों में से 85 प्रतिशत पौधे व जीव संसार में अन्यत्र कहीं भी नहीं पाए जाते हैं। अन्य हॉट स्पॉट, जो समृद्ध देशों में पाए जाते हैं, वहाँ कुछ अन्य प्रकार की समस्याएँ हैं। हवाई द्वीप जहाँ विशेष प्रकार की पादप व जंतु प्रजातियाँ मिलती हैं, वह विदेशज़ प्रजातियों के आगमन और भूमि विकास के कारण असुरक्षित हैं।

अभ्यास

1. बहुवैकल्पिक प्रश्न :

(i) जैव-विविधता का संरक्षण निम्न में किसके लिए महत्वपूर्ण है
(क) जंतु (ख) पौधे
(ग) पौधे और प्राणी (घ) सभी जीवधारी

(ii) निम्नलिखित में से असुरक्षित प्रजातियाँ कौन सी हैं
(क) जो दूसरों को असुरक्षा दें (ख) बाघ व शेर
(ग) जिनकी संख्या अत्यधिक हों (घ) जिन प्रजातियों के लुप्त होने का खतरा है।

(iii) नेशनल पार्क (National parks) और पशुविहार (Sanctuaries) निम्न में से किस उद्देश्य के लिए बनाए गए हैं:
(क) मनोरंजन (ख) पालतू जीवों के लिए
(ग) शिकार के लिए (घ) संरक्षण के लिए

(iv) जैव-विविधता समृद्ध क्षेत्र हैं :
(क) उष्णकटिबंधीय क्षेत्र (ख) शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र
(ग) ध्रुवीय क्षेत्र (घ) महासागरीय क्षेत्र

(v) निम्न में से किस देश में पृथ्वी सम्मेलन (Earth summit) हुआ था:
(क) यू.के. (U.K.) (ख) ब्राजील
(ग) मैक्सिको (घ) चीन

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 30 शब्दों में दीजिए :

(i) जैव-विविधता क्या हैं?
(ii) जैव-विविधता के विभिन्न स्तर क्या हैं?
(iii) हॉट-स्पॉट (Hot spots) से आप क्या समझते हैं?
(iv) मानव जाति के लिए जंतुओं के महत्व का वर्णन संक्षेप में करें।
(v) विदेशज प्रजातियों (Exotic species) से आप क्या समझते हैं?

3. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 150 शब्दों में दीजिए :

(i) प्रकृति को बनाए रखने में जैव-विविधता की भूमिका का वर्णन करें।
(ii) जैव-विविधता के ह्रास के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारकों का वर्णन करें। इसे रोकने के उपाय भी बताएँ।

परियोजना कार्य

जिस राज्य में आपका स्कूल है, वहाँ के नेशनल पार्क (National parks) पशुविहार (Sanctuaries) और जीवमंडल आरक्षित क्षेत्र (Biosphere reserves) के नाम लिखें और उन्हें भारत के मानचित्र पर रेखांकित करें।

शब्दावली

अजैव : कोई भी अजीवित वस्तु : सामान्यत: इसका तात्पर्य प्राणी के पर्यावरण के भौतिक और रासायनिक घटकों से होता है।

अपसौर/सूर्योच्च : यह पृथ्वी के परिक्रमा पथ का वह बिंदु जो सूर्य से सर्वाधिक दूर (152.5 मिलियन कि.मी.) होता है अपसौर 3 अथवा 4 जुलाई घटित होता है।

अधिकेंद्र/एपिसेंटर : पृथ्वी की सतह पर वह स्थल-बिंदु जो भूकंप के उद्‌गम केंद्र से सब से कम दूरी पर स्थित होता है और इसी स्थल-बिंदु पर भूकंपी तरंगों की ऊर्जा का विमोचन होता है।

अवरोही पवन : पर्वतीय ढाल से नीचे की ओर बहने वाली पवन।

आवास : पारिस्थितिकी के संदर्भ में प्रयुक्त शब्द जिससे किसी पौधे या प्राणि के रहने के स्थान/क्षेत्र का बोध होता है।

एल निनो : इक्वेडोर एवं पेरू तट के साथ-साथ सामुद्रिक सतह पर कभी-कभी गर्म पानी का प्रवाह। पिछले कुछ समय से संसार के विभिन्न भागों के पूर्वानुमान के लिए इस परिघटना का प्रयोग किया जा रहा है। यह सामान्यत: क्रिसमस के आसपास घटित होता है। तथा कुछ सप्ताहों से कुछ महीनों तक बना रहता है।

ओज़ोन : त्रि-आणुविक ऑक्सीजन जो पृथ्वी के वायुमंडल में एक गैस के रूप में पाई जाती है। ओजोन का अधिकतम संकेंद्रण पृथ्वी के पृष्ठ से 10-15 किलोमीटर की ऊँचाई पर स्ट्रेटोस्फियर (समताप मंडल) में पाई जाती है जहाँ पर यह सूर्य की परा-बैंगनी किरणों को अवशोषित कर लेती है। समताप मंडलीय ओजोन नैसर्गिक रूप से पैदा होती है तथा पृथ्वी पर सूर्य के पराबैंगनी विकिरण के दुष्प्रभाव से जीवन की रक्षा करती है।

ओज़ोन छिद्र : समताप मंडलीय ओजोन संकेन्द्रण में तीव्रता से मौसमी गिरावट। यह अंटार्कटिक में वसंत ऋतु में घटित होती है। इस की जानकारी 1970 में मिली थी उस के बाद यह वायुमंडल में जटिल रसायनिक प्रतिक्रिया, जिसमें (CFC) क्लोरोफ्लूरोकार्बन भी सम्मिलित हैं, के फलस्वरूप बार-बार प्रकट होता है।

अंतर उष्णकटिबंधीय अभिसरण क्षेत्र : विषुवत् वृत्त या उस के पास निम्न वायु दाब तथा आरोही वायु का क्षेत्र। ऊपर उठने वाली वायु धाराएं वैश्विक वायु अभिसरण तथा ताप जनित संवहन द्वारा बनती हैं।

केल्सीभवन : एक शुष्क पर्यावरणीय मृदा निर्माणकारी प्रक्रिया जिससे धरातल की मृदा परतों में चूना एकत्रित हो जाता है।

क्लोरोफ्लोरोकाबर्न (सी.एफ.सी.) : कृत्रिम रूप से उत्पन्न गैस जो पृथ्वी के वायुमंडल में सान्द्रित हो गई है। यह बहुत ही प्रबल ग्रीनहाउस गैस एरोसाल फुहारों, प्रशीतकों, धूम से बनती है।

कोरिऑलिस बल : पृथ्वी के घूर्णन के कारण उत्पन्न एक आभासी बल जो उत्तरी गोलार्द्ध में गतिमान चीज़ों को अपनी दाहिने ओर तथा दक्षिणी गोलार्द्ध मे अपने बाईं ओर विक्षेपित कर देता है। विषुवत् वृत्त पर यह बल शून्य होता है। इस बल से मध्यअंक्षाशीय चक्रवातों, हरीकेन तथा प्रतिचक्रवातों जैसे मौसमी परिघटनाओं के प्रवाह की दिशा निर्धारित होती है।

कपासी मेघ : अपेक्षाकृत समतल आधार वाले वृहत् मेघ। ये 300 से 2000 मीटर की ऊँचाई तक पाए जाते हैं।

कपासी वर्षी मेघ : एक पूर्णतय: विकसित ऊर्ध्वाधर मेघ जिसका शीर्ष प्राय: निहाई की आकृति का होता है। इन मेघों का विस्तार पृथ्वी के धरातल पर कुछ सौ मीटर से लेकर 12,000 मी॰ तक हो सकता है।

ग्रीन हाउस प्रभाव : दैर्घ्याधर तरंगों के रूप में अंतरिक्ष में प्रेषित ऊर्जा को वायुमंडल द्वारा अवशोषित कर के पृथ्वी के धरातल को ढक लेना।

ग्रीन हाउस गैसें : ग्रीन हाउस प्रभाव के लिए जिम्मेदार गैंसे है। इन गैसों में कार्बन-डाइआक्साइड (CO_2) मिथेन, नाइट्रस आक्साइड, क्लोरोफ्लोरो कार्बन सी.एफ.सी. तथा क्षोभ मंडलीय ओजोन सम्मिलित हैं।

गुप्त ऊष्मा : किसी पदार्थ को उस के उच्चतर स्थिति में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक ऊर्जा जैसे (ठोस ——→ द्रव——→ गैस) यही ऊर्जा पदार्थ से उस समय उत्पन्न होती है जब स्थिति उलट जाती है जैसे (गैस——→द्रव——→ठोस)।

जैव-विविधता : विभिन्न प्रजातियों की विविधता (प्रजातीय विविधता), प्रत्येक प्रजाति में आनुवांशिक विभिन्नता (आनुवांशिक विविधता) और पारितंत्रों की विविधता।

जीवभार : एक समय विशेष के अंतराल पर सामान्यत: प्रति इकाई क्षेत्र मापा गया जीवित ऊतकों का भार।

ज्वालामुखी कुंड : विस्फोटक प्रकार का ज्वालामुखी जिससे विशाल वृत्ताकार गर्त बन जाता है। इनमें कई गर्तों का व्यास 40 कि.मी. जितना बड़ा हो सकता है ये ज्वालामुखी तब बनते हैं जब ग्रेनाइट प्रकार का मैग्मा पृथ्वी की सतह की ओर तीव्रता से उठाता है।

जलयोजन (हाइड्रेशन) : रासायनिक अपक्षयण का एक रूप जो किसी खनिज के परमाणु एवं अणुओं के साथ पानी के (H+ तथा OH-) आयनों की दृढ़ संलग्नता का द्योतक है।

जल, अपघटन (हाड्रोलिसिस): रासायनिक अपक्षयण की वह प्रक्रिया जिस में खनिज आयनों एवं जल आयनों (OH- और H+) की प्रतिक्रिया सम्मिलित होती है। और इससे नए यौगिकों के निर्माण से चट्टानी पृष्ठ का अपघटन होता है।

ताप प्रवणस्तर : किसी जल संहति में वह सीमा जहाँ तापक्रम में अधिकतम ऊर्ध्वाधर परिवर्तन होता है। यह सीमा सतह के पास पाए जाने वाले पानी की कोष्ण परत तथा गंभीर शीतल पानी की परत के बीच का संक्रमण क्षेत्र है।

थल समीर : स्थल और जल के मध्य अंतरापृष्ठ पर पाया जाने वाला स्थानीय ताप परिसंचरण तत्र। इस तंत्र में पृष्ठीय पवनें रात के समय स्थल से सागर की ओर चलती हैं।

दुर्बलतामंडल : पृथ्वी के मेंटल का वह खंड जो लचीले लक्षणों का प्रदर्शन करता है। दुर्बलतामंडल स्थल मंडल के नीचे 100 से 200 कि.मी. के बीच अवस्थित होता है।

ध्रुवीय ज्योति : ध्रुवीय प्रदेशों के ऊपरी वायुमंडल (आयनमंडल) में बहुरंगी प्रकाश जो मध्य एवं उच्च अक्षांशों में स्थित स्थानों से दृष्टिगोचर होता है, इसकी उत्पति सौर पवनों की ऑक्सीजन और नाइट्रोजन से परस्पर क्रिया फलस्वरूप होती है। उत्तरी गोलार्ध में ध्रुवीय ज्योति को उत्तर ध्रुवीय ज्योति और दक्षिणी गोलार्ध में इसे दक्षिणी ध्रुवीय ज्योति कहा जाता है।

पक्षाभस्तरी मेघ : बहुत ऊँचाई पर चादर (Sheet) की तरह के बादल ये भी हिम कणों से बनते हैं। इन बादलों की पतली परत पूरे आकाश पर छाई हुई दिखती है। ये भी 5000 से 18000 मीटर की ऊँचाई तक पाए जाते हैं।

पारिस्थितिक तंत्र/पारितंत्र : किसी क्षेत्र का जैव एवं अजैव तत्वों से बना तंत्र। ये दोनों समुदाय अंत:संबंधित होते हैं और इनमें अंत: क्रिया होती है।

पुरा चुंबकत्त्व (पैलियोमैगनटिज़्म) : चट्टानों की रचना काल में उन में विद्यमान चुंबकीय प्रवृत्ति ग्रहणशील खनिजों द्वारा क्षैतिज झुकाव के रूप में सरेखण।

प्लेट विवर्तनिक : वह सिद्धांत जिस की मान्यता है कि भूपृष्ठ कुछ महासागरीय एवं महाद्वीपीय प्लेटों से बना है। मैंटल में संवहनीय धाराओं के संचलन। इन प्लेटों में पृथ्वी के दुर्बलतामंडल के ऊपर धीरे-धीरे खिसकने की योग्यता होती है।

प्रकाश संश्लेषण : यह एक रसायनिक प्रक्रिया है जिसमें पौधे तथा कुछ बैक्टीरिया सूर्य से ऊर्जा प्राप्त कर के उसे धारण कर लेते हैं।

बायोम : पृथ्वी पर प्राणियों और पौधों का सबसे बड़ा जमाव बायोम का वितरण मुख्यत: जलवायु से नियंत्रित होता है।

बिग बैंग : ब्रहमांड की उत्पत्ति से संबंधित सिद्धांत इस सिद्धांत के अनुसार 1500 करोड़ वर्ष पूर्व ब्रह्मांड के समस्त पदार्थ एवं ऊर्जा एक अणु से भी लघु क्षेत्र में सांद्रित थे। इस अवस्था में पदार्थ, ऊर्जा, स्थान और समय अस्तित्व में नहीं थे। तब अचानक एक धमाके के साथ ब्रह्मांड अविश्वसनीय गति से विस्तृत होने लगा और पदार्थ, ऊर्जा, स्थान और समय अस्तित्व में आए, ज्यों ही ब्रहमांड का विस्तार हुआ पदार्थ गैसीय बादलों में व तत्पश्चात् तारों व ग्रहों में संलीन होने लगा। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि यह विस्तार परिमित है और एक दिन रुद्ध हो जाएगा। समय के इस मोड़ पर जब तक बिग क्रंच घटित नहीं होता ब्रह्मांड का विध्वंस होना आरंभ हो जाएगा।

बैथोलिथ/महास्कंध : अधोतल में स्थित आंतरिक आग्नेय शैलों की विशाल संहति, जिसकी उत्पत्ति मैटल मैग्मा से हुई है।

भाटा : उच्च ज्वार के पश्चात् समुद्र के पानी की सतह में गिरवट या प्रतिसरण।

भूकंप : भूकंप पृथ्वी के भीतर की यकायक गति या हिलने को कहते हैं। यह गति धीरे-धीरे संचित ऊर्जा के भूकंपी तंरगों के रूप में तीव्र मोचन के कारण उत्पन्न होती है।

भूकंप उद्गम केंद्र (अथवा अधिकेंद्र) : भूकंप में प्रतिबल मोचन बिंदु।

भू-चुंबकत्व : चट्टानों की रचना की अवधि के दौरान चुंबकीय रूप से ग्रहण शील खनिजों का पृथ्वी के चुबंकीय क्षेत्र से सरेखित होने का गुणधर्म।

भूमंडलीय ऊष्मन : ग्रीन हाउस गैसों के कारण पृथ्वी के औसत वैश्विक तापमान में वृद्धि।

भूविक्षेपी पवन : ऊपरी वायु मंडल में समदाब रेखाओं के समानांतर चलने वाली क्षैतिज पवनें जो दाब प्रवणता बल एवं कोरियालिस बल के बीच संतुलन से उत्पन्न होती है।

महाद्वीपीय पर्पटी : भू-पर्पटी का ग्रेनाइटी भाग जिस से महाद्वीप बने हैं। महाद्वीपीय पर्पटी की मोटाई 20 से 75 किलोमीटर के बीच पाई जाती है।

रुद्धोष्म ह्रास दर : ऊपर उठती अथवा नीचे आती वायु संहति के तापमान के परिवर्तन की दर। यदि कोई अन्य अरुद्धोष्म प्रक्रियाएँ (जैसे तन्त्र में उष्मा का प्रवेश अथवा निकास) घटित नहीं होतीं (जैसे संघनन, वाष्पीकरण और विकिरण) तो विस्तार वायु के इस खंड का 0.98° सेल्सियस प्रति 100 मीटर की दर

से शीतलन करती है, जब कोई वायु का खंड वायुमंडल में नीचे उतरता है तो इससे विपरीत घटित होता है, नीचे उतरती वायु का खंड संपीडित हो जाता है। संपीडन के कारण वायु के खंड का तापमान 0.98° सेल्सियस प्रति 100 मीटर बढ़ जाता है।

रेगिस्तानी कुट्टिम : वायु द्वारा बारीक कणों के अपरदन के बाद भूमि पर छूटे हुए मोटे कणों की पतली चादर।

ला निना : यह एल निनो की विपरीत स्थिति होती है। इस के अंतर्गत उष्णकटिबंधीय प्रशांत महासागरीय व्यापारिक पवनें सबल हो जाती हैं जिस के कारण मध्वर्ती एवं पूर्वी प्रशांत महासागर में ठंडे जल का असामान्य संचयन हो जाता है।

लघु ज्वार भाटा : हर 14-15 दिन में आने वाला ज्वार जो चंद्रमा के पहले चौथाई या आखिरी चौथाई काल में होता है। इस समय चंद्रमा तथा सूर्य के गुरुत्वाकर्षण बल एक दूसरे की लंबवत स्थिति में होते है। अत: ज्वार की ऊँचाई या भाटे की नीचाई सामान्य से कम होती है।

वर्षण : भू-पृष्ठ पर मेघों से वर्षा की बूंदों, हिम एंव ओले के रूप में गिरना। वर्षा, हिमपात, करकापात तथा मेघों का फटना आदि वर्षण के विभिन्न रूप हैं।

वर्षास्तरी मेघ : वर्षा अथवा हिमपात के रूप में लगातार वर्षण करने वाले एवं कम ऊँचाई वाले काले या भूरे मेघ। ये प्राय: भूपृष्ठ से 3000 मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं।

वायु संहति : वायु का वह पिंड जिसमें उद्भव क्षेत्र से ग्रहण किए गए तापमान एवं आर्द्रता के लक्षण सैकड़ों से हज़ारों किलोमीटर की क्षैतिज दूरियों में अपेक्षाकृत स्थिर रहते हैं। वायुसंहतियाँ उद्भव क्षेत्र में अनेक दिनों तक स्थिर रहने के बाद अपने जलवायविक लक्षणों का विकास करती हैं।

वायुमंडलीय दाब : धरातल पर वायुमंडल का भार 1 समुद्र तल पर औसत वायुमंडलीय 1,013.25 मिलीबार होता है। दाब को एक उपकरण द्वारा मापा जाता है जिसे वायुदाब मापी अथवा बैरोमीटर कहा जाता है।

शीताग्र : वायुमंडल में एक सक्रमण क्षेत्र जहाँ आगे बढ़ती हुई एक शीत वायु संहति गर्म वायु संहति को विस्थापित कर देती है।

सूर्यातप : *सूर्य की लघु तरंगों के रूप में विकीर्ण ऊर्जा।*

सौर पवन : सूर्य द्वारा अंतरिक्ष मे प्रेषित आयन युक्त गैस संहति यह ध्रुवीय ज्योति (प्रकाश पुंज) के बनने में सहायक होती है।

स्वच्छता– एक आदत है।

(स्वच्छ भारत, स्वच्छ विद्यालय)

Everyone must be his own scavenger.

M. K. Gandhi

प्रत्येक को अपना कूड़ा–करकट, स्वयं साफ करना चाहिए।

–महात्मा गांधी

राज्य स्वच्छ भारत मिशन

छत्तीसगढ़ शासन